पं० माधवप्रसाद मिश्र : व्यक्तित्व और कृतित्व

डा० मुरारी लाल गोयल 'शापित'

हरियाणा साहित्य अकादमी, चण्डीगढ़

प्रथम सस्करण 1981
प्रतियाँ 1100
मूल्य दस रुपये

मुद्रक सहारा प्रिंटिंग प्रेस, चण्डीगढ ।

प्रस्तावना

हरियाणा के साहित्य मनीषी प० माधवप्रसाद मिश्र (1871 1907 ई०) ने हिन्दी साहित्य की समद्धि मे महत्त्वपूण योगदान दिया। मिश्रजी ने निबन्ध, कहानी, आलोचना, पत्रकारिता, रिपोर्ताज एव काव्य को अपने मौलिक लेखन से सम्पन्न किया। पौराणिक मतावलम्बी होते हुए भी वे समाज सुधारक तथा पक्के देशभक्त थे।

डा० मुरारी लाल 'शापित ने मिश्रजी के समस्त गद्य तथा पद्य साहित्य का प्रस्तुत पुस्तक मे सम्यक् विवेचन किया है। उन्होने मिश्रजी को हिन्दी का प्रथम मौलिक कहानीकार सिद्ध किया है। डा० शापित के इस दावे को आसानी से अस्वीकार नही किया जा सकता क्योकि उन्होने अपने मत का अकाट्य तथ्यो और सुपुष्ट प्रमाणो के आधार पर प्रतिपादन किया है। इस पुस्तक के प्रकाशन से मिश्रजी के व्यक्तित्व और कृतित्व सम्बन्धी अनेक नये तथ्य प्रकाश मे आयेगे।

प्रस्तुत पुस्तक का प्रकाशन हरियाणा की सस्कृति, कला, इतिहास और लोक साहित्य सम्ब धी अकादमी की पुस्तके तैयार करवाने की योजना के अ तगत किया गया है। आशा हे इस प्रकाशन से प० माधवप्रसाद मिश्र की बहुमुखी प्रतिभा का आज के साहित्यकारों एव आलोचको को परिचय ही नही बल्कि उससे प्रेरणा भी प्राप्त होगी।

देसराज

शिक्षा मन्त्री, हरियाणा सरकार
एव अध्यक्ष,
हरियाणा साहित्य अकादमी

निदेशक,
हरियाणा साहित्य अकादमी

भूमिका

प्रस्तुत कृति 'प० माधव प्रसाद मिश्र व्यक्तित्व और कृतित्व' हरियाणा साहित्य अकादमी को प्रेषित करते हुए आत्मानन्द की अनुभूति कर रहा हूँ। मिश्रजी सम्बन्धी लुप्तप्राय सामग्री के सकलन तथा सयोजन हेतु इलाहाबाद, काशी, लखनऊ, कलकत्ता बम्बई तथा जयपुर आदि अनेक नगरो और कतिपय कस्बो और ग्रामो की यात्रा कर, पाँच वष की दीघ अवधि के पश्चात् यह काय सम्पन्न हुआ। प्रस्तुत कृति मे नौ अध्यायो के अन्तगत मिश्रजी के व्यक्तित्व तथा कृतित्व की रूपरेखा का सयोजन किया गया है तथा अन्तिम अध्याय मे मिश्रजी के हिन्दी साहित्य मे योगदान पर विहगम दृष्टिपात किया गया है। पुस्तक की पृष्ठीय सीमा प्रतिबद्धता के कारण अनेक उदाहरण, पत्र तथा चित्र आदि देने मे असमथ रहा हूँ।

प्रस्तुत कृति के प्रकाशन के लिए 'हरियाणा साहित्य अकादमी' तथा उसके निदेशक डा० कृष्ण मधोक साधुवाद के पात्र हैं। मिश्रजी के विस्मृत प्राय व्यक्तित्व और कृतित्व को प्रकाश मे लाने से न केवल हरियाणा की गौरव गाथा मे एक नये अध्याय की श्रीवृद्धि होगी अपितु हिन्दी साहित्य की अनेक विधाओ, विशेषत 'कहानी' के सन्दर्भ मे नव दिशा और नव चिंतन का मार्ग भी प्रशस्त होगा। प० माधव प्रसाद के प्रमुख कथा साहित्य के अवलोकनोपरात श्री विष्णु प्रभाकर आदि अनेक प्रभृति विद्वानो ने ऐसा भाव प्रकट किया है।

अन्त मे इस अकिंचन प्रयास के सम्बन्ध मे इतना ही कहना चाहता हूँ कि यह काय अथ लाभ की अपेक्षा, भारतीय सस्कृति के अपूर्व सरक्षक, स्वाभिमान की प्रतिमूर्ति, लोह लेखनी के

धनी, अनेक नव-विधाग्रो की पूव पीठिका प्रस्तुत करने वाले पण्डितवर माधव प्रसाद मिश्र के प्रति श्रद्धा भाव सहित पूण ग्रास्था और ईमानदारी से किया गया है। इस कति के पठन पाठन से यदि सुविज्ञ साहित्य पेमी बन्धुओ के मन मे मिश्रजी की ग्रन्य रचनाओ के सम्बन्ध मे जानने तथा पढने की इच्छा भर भी जाग सकी तो मै ग्रपने इस कार्य को सफल समझूगा।

इस कृति की सामग्री के सयोजन मे जिन ग्रन्थो तथा महानुभावो का प्रत्यक्ष ग्रौर अप्रत्यक्ष सहयोग तथा प्रोत्साहन लिया गया अथवा मिला है, उनका मै हृदय से आभारी हूँ।

18/1639, महावीर ब्लाक,
भोलानाथ नगर,
शाहदरा, दिल्ली-110032

मुरारी लाल गोयल 'शापित'

अनुक्रमणिका

1
पं० माधव प्रसाद मिश्र का व्यक्तित्व

जन्म-तिथि और जन्म स्थान

प० माधव प्रसाद मिश्र का जन्म सवत् 1928 के भाद्र मास की शुक्ल पक्षीय सवसिद्धा त्रयोदशी, दिन मगलवार को ब्रह्ममहूत मे, भिवानी से पश्चिमात्तर दिशा मे 8 मील और हासी रोड स आगे 7 मील पश्चिम दिशा मे नहर की पटरी पर स्थित कूगड[1] गाव म, अपने समय के प्रतिष्ठित विद्वान् प० रामजीदास के घर मे हुआ था। ज्योतिष गणना के अनुसार इस वष 2 भाद्र मास थे और दूसरे भाद्र मास मे ही शुक्ला त्रयोदशी का मगलवार पडता है अत 27 सितम्बर, 1871 ही मिश्र जी की जन्म तिथि सिद्ध होती है। आचाय रामचन्द्र शुक्ल आदि विद्वानो की कृतियो मे सन् 1871 का ही उल्लेख है, तिथि का नही।

भिवानी

हरियाणा राज्यान्तगत दिल्ली के पश्चिम मे 90 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है जो आसन्नभूत मे अपनी विशिष्ट राजनीतिक गतिविधि के फलस्वरूप विश्व फलक पर अपना स्थान बना चुका है। यहा के पुरातन मन्दिर, धमशालाएँ तथा कुओ के खण्डहर भिवानी की प्राचीनता के साथ साथ हिन्दुत्व की प्रचीनता का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। भिवानी किसी समय व्यापार का प्रमुख केन्द्र तथा मारवाडियो का लीलाक्षेत्र रहा। आज भी यहा के सम्पन्न तथा उदारमना व्यापारियो मे हलवासिया कुल बहुत ही सम्मानित है। भिवानी मे उनका धर्माथ औषधालय भी है। प० माधव प्रसाद मिश्र के जन्म स्थान कूगड मे अधिकाश व्यक्ति खती बाडी करते है। अन्य जनपदो के समान कुछ व्यक्ति अध्ययन तथा विभिन्न शासकीय सेवाओ मे भी सलग्न है। इस क्षेत्र की महिलाएँ अन्य क्षत्रो की तुलना मे आज भी आधुनिकता से नितात दूर हैं। अधिकाँश परिवारो का रहन सहन सीधा साधा और परम्परागत है।

मिश्र जी का जन्म जिस घर मे हुआ था, वह सन् 1972 तक स्थित था। घर के जिस कोठे मे उनका जन्म हुआ, उसमे उस समय अनाज भरा हुआ था। उसके सामने

1, राजस्थानी मे कूगड शब्द का प्रयोग सशक्त तथा दढ अथवा जवानी के अथ मे होता है। यथा छोरा कूगर हो गया सै।

और बराबर के कोठे तथा बरामदे आदि सब पुराने ढग के कच्चे बने हुए थे जिनमे लकडी तथा अन्य सामान भरा हुआ था। आवास की दृष्टि से वतमान मे यह स्थान रहने के लिए सवथा अनुपयुक्त है किन्तु पर्याप्त क्षेत्र और निर्माण व्यवस्था की दृष्टि से मिश्रजी के पूवजो की सहज किन्तु सुरुचिपण दृष्टि का प्रत्यक्ष परिचायक है। यह स्थान गाव के मध्य भाग मे अपेक्षाकृत ऊँचाई पर स्थित है। गाव के बाहर एक काफी बडा तालाब है जिसे देखकर सहज ही अनुमान किया जा सकता है कि अतीत मे वह एक सुन्दर और आकषक स्थान रहा होगा। इसके दो किनारो पर छतरी तथा सीढियाँ बनी हुई है। उसकी उत्तर दिशा मे एक बहुत पुराना पीपल का वहद वक्ष है।[1] गाव के वयोवद्ध व्यक्तियो से ज्ञात हुआ कि मिश्रजी यहा के आवास काल मे नियमित रूप स प्रात साय सध्या उपासना करने यही आते थे। आज भी ऐसे विश्वासी व्यक्ति गाव मे हैं जो इस स्थान को सिद्ध तथा प्रणम्य मानते है।

वश-परिचय

मिश्र परिवार के 'कूगड आने की एक लम्बी कहानी है। प० मुसद्दीलाल के आत्मज प० रामरिछपाल मिश्रजी के चचरे भाई थे। प० रामरिछपाल के अनुसार उनके वश का उदगम और जन्म स्थान बगाल का नदिया शान्ति' है। पुराण युग से सम्बन्ध जोडते हुए पडित जी ने बताया कि जनमेजय के नागयज्ञ के अवसर पर उनके पूवज प० मूल चन्द मिश्र हस्तिनापुर आए और उस यज्ञ के आचाय बने। कुछ पीढियो तक वे हस्तिनापुर रहे फिर बागड क्षेत्र के 'डिडवानी' मे कुछ समय तक रहे। कुछ समय हिसार के 'लादोस' मे रह कर तदनन्तर 'लुहारी' जा बसे। सात आठ पीढी पूव उनके पूवज बाबा बूडनदास लुहारी से 'कूगड' आए और यही मे उनकी कीर्ति और प्रसिद्धि की प्रतिष्ठता होने लगी। इस वश के इस स्थान पर रहने और विद्वत्ता का सकेत अकबर के राज्यकाल तक विद्यमान रहा है। अकबर तथा जहागीर के समय की लिखी हुई सस्कृत की हस्तलिखित अनेक प्राचीन पुस्तके इनके यहा अभी तक सुरक्षित है।[2]

बाबा बूडन की परम्परा मे प० घनश्यामदास व्याकरण के प्रकाण्ड पडित और विद्वान् थे। वे प्रसिद्ध साधु 'बाबा निश्चलदास'[3] के आरम्भिक गुरु थे। इन्ही प० घनश्यामदास जी के यहा प० जयरामदास का जन्म हुआ। इन्होने भी अपन समय मे अच्छी ख्याति प्राप्त की। प० जयरामदास जी ही 'कूगड' से भिवानी आए थे। भिवानी मे इनके परिवार को आज भी 'कूगडिया के नाम से जाना जाता है। कूगड और

1 देखिये 'द्विवेदी युगीन गद्य साहित्य के परिप्रेक्ष्य मे प० माधव प्रसादमिश्र के गद्य साहित्य का अध्ययन , स्वीकृत शाध प्रबन्ध मे दिये गय चित्र और विशद विवरण।

2 श्री राघवेन्द्र, अक 9 पृष्ठ 355

3 वृत्ति प्रभाकर आदि के लेखक

'कूगडिया' के सम्बन्ध मे प० भावरमल शर्मा[1] ने निम्नलिखित दोहा सुनाया—

खग्ग गाव मे खग वसे, बिना कुसाली राम।
गैले चलता कह गया कूगडिया जयराम ॥

सन् 1972 मे भिवानी प्रवास काल मे प० रामरिछपाल (अब स्वर्गीय) जी के दशन करने के साथ उनके सुपुत्र श्री रमेशचन्द्र मिश्र के सौजन्य से पर्याप्त प्राचीन हस्तलिखित कृतिया देखने का सौभाग्य मिला। कूगड से भिवानी आने की एक अलग ही कहानी है। प० जयरामदास ने किसी विधवा युवा चमारिन को सती कराया था जिसके परिणामस्वरूप अग्रेज शासको ने प० जयरामदास को मृत्यु दण्ड की सजा दी जिस पर अपील की गयी और क्षेत्र के प्रभावशाली व्यक्तियो की साक्षी पर कमिश्नर महोदय ने उन्हे मुक्त किया।[2]

प० जयरामदास से ही यह वश प्रकाश मे आया। इनके दत्तक पुत्र प० रामजी दास भी अपने समय के अच्छे प्रतिभाशाली व्यक्ति थे।[3] वे सस्कृत के उद्भट विद्वान थे। उनकी हस्तलिखित अनेक कृतिया सन् 1972 तक सुरक्षित थी। इन्ही प० रामजीदास की धमपत्नी श्रीमती सारा देवी ने प० माधव प्रसाद मिश्र को जन्म दिया। इनके अनुज प० राधा कृष्ण मिश्र भी प्रतिभा सम्पन्न व्यक्ति थे। उन्होने भी समाज और साहित्य की पर्याप्त सेवा की।

प० माधव प्रसाद मिश्र का शिक्षा-प्रेम

प० माधव प्रसाद मिश्र की प्रतिभा परम्परागत सस्कारजन्य थी। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा घर पर ही हुई। घर मे परम्परा से ही सस्कृत, व्याकरण और दशन का वातावरण विद्यमान था। प० माधव प्रसाद मिश्र प्रतिभा सम्पन्न थे और उन्होने अपनी प्रतिभा का परिचय बाल्यकाल से ही देना प्रारम्भ कर दिया था।[4] मिश्र जी ने अपने पिता प० जयरामदास से व्याकरण काव्य, पुराण तथा धमशास्त्र की शिक्षा प्राप्त करने के साथ ही सस्कृत मे भी अच्छी पैठ हासिल कर ली थी। शैशव काल मे दादी के मुख से सुनी धार्मिक तथा पौराणिक कथाओ का भी मिश्रजी के व्यक्तित्व पर पर्याप्त प्रभाव पडा। विद्या के उच्च सोपान पर चढने की लालसा किशोर माधव को उन दिनो बुलन्दशहर जनपद के डासना गाव मे खीच लायी। डासना मे प्यावली के छत्रपति प० श्रीधर के पाण्डित्य की बहुत धूम थी। उनकी विद्या तथा भविष्यवाणी से प्रभावित होकर काशी नरेश ने सारस्वत ब्राह्मणो की तुलना मे गौड वशीय श्रीधर जी को 'छत्रपति' की उपाधि दी।[5] युवक माधव डासना के प० श्रीधर जी से शिक्षा ग्रहण कर

1 भूतपूव सम्पादक दैनिक कलकत्ता समाचार'।
2 शोध प्रबन्ध, पृष्ठ 32 33
3 भिवानी इतिहास, अतीत खड, पृष्ठ 155
4 भारतीय दशनशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ 5
5 शोध प्रबन्ध

काशी पहुँचा और वहा के सवतन्त्र स्वतन्त्र महामहोपाध्याय प० राम मिश्र शास्त्री से दर्शनशास्त्र की शिक्षा ग्रहण की तथा उनके सान्निध्य मे प० उमापति (प्रसिद्ध प० नकछेदराम तिवारी) से साहित्य का अध्ययन किया। अध्ययनशील स्वभाव और जिज्ञासु वृत्ति के कारण मिश्रजी ने उर्दू बगला, मराठी, गुजराती और गुरुमुखी आदि भाषाओ मे अच्छी गति प्राप्त करली थी। अध्ययनशील प्रवृत्ति का इससे बढकर क्या प्रमाण होगा कि सोलह वष की आयु मे विवाह हो जाने पर भी अध्ययन क्रम पच्चीस वष की आयु तक नियमित रूप से चलता रहा।[1]

प० माधव प्रसाद मिश्र के सस्कार

उपर्युक्त विद्वान् आचार्यों से शास्त्र आदि की शिक्षा ग्रहण करने के पूव ही मिश्रजी को अपनी पितामही से पर्याप्त ज्ञान प्राप्त हो चुका था। दादी की गोद मे बैठकर सुनी धार्मिक गाथाओ ने माधव के मन मे धम ज्ञान का बीज बो दिया था जो उनके साहित्य और जीवन वृत्त के क्षेत्र मे सवत्र देखा जा सकता है। साहित्य साधना क अतिरिक्त सामाजिक क्षेत्र मे भी सनातन धम सभा के तत्त्वावधान मे सस्कृत पाठशाला की स्थापना की। व्याख्यान वाचस्पति प० दीनदयालु शर्मा 'भारत धम महामण्डल' के सस्थापक और अपने समय के बहुचर्चित और प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। प० चक्रधर शर्मा गुलेरी उनका गुरुवत् आदर करते थे और उनके निकटतम व्यक्तियो मे से थे। इन दोनो विद्वानो के साथ मिश्रजी ने अनेक धम सभाओ मे प्रवचन किये। शिमला आदि अनक स्थानो पर अनेक बार धार्मिक प्रवचन किये। कलकत्ता मे स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती के नाम पर 'श्री विशुद्धानन्द विद्यालय' की स्थापना मे तन, मन और धन से पूण योग दिया। उनके प्रवचनो और लेखो से प्रभावित होकर मारवाडी समाज ने मुक्तहस्त से दान दिया।[2] स्वय अर्थसकट सहते हुए भी मिश्रजी धम कार्यार्थ दान देते रहे। सवत 1954-55 की भिवानी धम सभा की विवरणिका मे 50 रुपये दान देने वाले कतिपय धनाढ्य व्यक्तियो की तालिका मे मिश्रजी का नाम भी अकित है। मिश्रजी सभा के कमठ सदस्य थे। उनके समय मे आय समाज अपने चरमोत्कष पर था। मिश्रजी अन्धविश्वासी नही थे और वे कट्टर सनातनधर्मी थे। अत अपने स्वास्थ्य की उपेक्षा करते हुए देशाटन पर निकल पडे। स्थान स्थान पर सनातन धम सभाओ और पथभ्रष्ट ब्राह्मणो के लिए कलकत्ता मे 'कलकत्ता ब्राह्मण सभा' की स्थापना की। दरभगा नरेश श्री रामेश्वर सिंह को इसका सस्थापक सदस्य तथा सभापति बनाया। कलकत्ता मे धनाढ्य-परिवार की महिलाओ के पैरो मे मेहदी लगाने का काय ब्राह्मण महिलाएँ किया करती थी तथा विवाह आदि के अवसर पर गदे सीठने गाती थी। मिश्रजी ने सीठने और मेहदी' शीषक लेख लिखकर इस कुप्रथा का विरोध ही नही किया अपितु अपने वैयक्तिक प्रभाव तथा लेखन शक्ति के बल पर इस कुप्रथा को सदैव के लिए बन्द करा

1 माधव मिश्र निबन्ध माला, पृष्ठ 9
2 श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय, स्वर्ण जयन्ती अक।

दिया ।[1] प० माधव प्रसाद मिश्र की धार्मिक प्रवृत्ति के दशन उनके पौत्र श्री सुरेश चन्द्र मिश्र के सौजन्य से 500-600 पृष्ठो की एक पुरानी हस्तलिखित कापी के देखने से भी हुए जिसमे महाभारत तथा पुराण सम्बन्धी अनेक सकेत थे। इसी कापी मे मिश्रजी द्वारा रचित कतिपय कविताओ और भजनो की पक्तियाँ भी उनकी धार्मिक भावनाओ को उदघाटित करती हैं—

1 आवो सनातन धर्मियो ध्यावें गनेश को।
2 गणपति मनाइए, देरी न लाइए।
3 महाशय गणधिप मनावो।
4 कहे मिश्र' अपरूप अब शीघ्रता से उत्साह सबका बढाओ।

इसी कापी मे गणेश जी सम्बन्धी अनेक भजन लिखे हैं जिनम क्रम सख्या 46, 47 तथा 49 मे गणेश जी की अभ्यथना मुक्त भाव से की गयी है। इन प्रारम्भिक रचनाओ की भावाभिव्यक्ति को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि मिश्रजी की धार्मिक प्रवृत्ति मे पच देवोपासना की भावना और आस्था के स्पष्ट दशन होते हैं।

उपाधि-त्याग

मिश्रजी की निस्वाथ सेवा कमण्यता तथा काय की महत्ता को देखते हुए जगत् गुरु शकराचाय 'भारत धम महामण्डल' 'बगाल विवुध जननी सभा' तथा बम्बई प्रान्तीय धम सभा' आदि अनेक सस्थाओ ने मिश्रजी के सामने अनेक उपाधि स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा जिसे मिश्रजी ने लाख आग्रह करने पर भी स्वीकार नही किया।[2] जबकि इस समय प्रत्येक क्षेत्र मे उपाधि प्राप्त करने की होड लग रही थी। मिश्रजी सच्चे अर्थों मे गीता मे अनासक्त योग सिद्धान्त के अनुयायी थे। उन्ही के शब्दो मे ' सोपाधिक जीवन से निरुपाधिक जीवन बहुत अच्छा है।"

प० माधव प्रसाद मिश्र का स्वभाव

मिश्रजी बचपन मे चचल स्वभाव के थे। शान्त अथवा निष्क्रिय बैठना उनके स्वभाव म नहीं था। स्व० प० रामरिछपाल जी के अनुसार उन्हे बचपन मे गाने, बजाने तथा नाचने का भी शौक था। बाल्यकाल से ही धार्मिक गीत रचना करते थे जिनके माध्यम से लोगो को धम सभाओ मे एकत्रित करने मे बहुत सहायता मिलती थी। प० झाबरमल शर्मा के मतानुसार राजस्थान मे तुर्रा' (पुरुष कलगी) लोक-साहित्य परम्परा का मनोविनाद होता था। इसमे स्त्री पुरुष के भावो की सहज अभिव्यक्ति के द्वारा मनोरजक वाद विवाद होता था। प्रारम्भ मे मिश्रजी ने इसमे पर्याप्त रुचि ली। मिश्रजी की इस विनोदप्रिय प्रवृत्ति का प्रमाण वैश्योपकारक' मे 'साडी घाघरा शीषक कविता है। मिश्रजी बचपन मे 'ख्याल' भी गाते थे। आयु के

1 वैश्योपकारक, वष 1, सख्या 10
2 भारतीय दशनशास्त्र की उपक्रमणिका, पृष्ठ 13

साथ साथ स्वभाव की चचलता गम्भीरता मे परिणित होती गयी परिणामस्वरूप विद्यार्थी काल मे विविध स्थानो पर जाकर शीषस्थ विद्वानो मे विद्या और ज्ञानाजन करते हुए जब वे भिवानी लौटे तो सर्वप्रथम ज्येष्ठ कृष्ण 10, बुधवार सम्वत् 1954 तदनुसार 26 मई 1897 को भिवानी मे 'सनातन धम सभा' की स्थापना की।

सुदशन' पत्र की नीति सम्बन्धी घोषणा भी मिश्रजी के सनातनधर्मी सस्कारजन्य स्वभाव की प्रत्यक्ष प्रमाण है। यथा "हम यह भी सूचित करते है कि 'सुदशन' हिन्दू पत्र है और यह सनातन धम को अपना प्राण समझता है। साथ ही व्यक्ति विशष और सम्प्रदाय विशेष का इसे दुराग्रह भी नही है"।[1] वस्तुत मिश्रजी पाश्चात्य विचारधारा के अधानुकरण के कट्टर विरोधी थे। इस सम्बन्ध मे आचाय रामचन्द्र शुक्ल के शब्द द्रष्टव्य हैं—' इसमे सदेह नही कि जहाँ किसी ने कोई ऐसी बात लिखी जो इन्हे सनातन धम के सस्कारो के विरुद्ध अथवा प्राचीन ग्रन्थकारो और कवियो के गौरव को कम करने वाली लगी कि इनकी लेखनी चल पडती थी। पाश्चात्य सस्कृताभ्यासी विद्वान जो कच्चा पक्का मत यहा के वेद, पुराण, साहित्य आदि के सम्ब ध मे प्रकट किया करते थ वे इन्हे खल जाते थे और उनका विरोध ये डटकर करते थे। उस विरोध मे तक आवेश और भावुकता का एक अद्भुत मिश्रण रहता था। 'बेबर का भ्रम' इसी झोक मे लिखा गया था।"[2]

मिश्रजी का स्वभाव दुराग्रही तथा पूर्वाग्रही नही था। आचाय महावीर प्रसाद द्विवेदी बाबू श्याम सुन्दरदास, लाला बालमुकन्द गुप्त आदि के सन्दभ इसके प्रत्यक्ष प्रमाण है।[3] आचार्य द्विवेदी मे श्रीधर पाठक की कविता तथा 'नैषधचरित्र चर्चा' को लेकर पर्याप्त तीखी नोक झोक हुई। बाबू श्यामसुन्दरदास ने अप्रत्यक्ष रूप से मिश्रजी पर व्यग्य किया था कि "विद्यालय और विश्वविद्यालय का मुह तक न देखने वाले व्यक्ति को साहित्य चर्चा का अधिकार नही", किन्तु मिश्रजी ने बिना किसी द्वेष तथा पूर्वाग्रह के बहुत ही प्रखर तथा तीखा साहित्यिक उत्तर दिया। इसी प्रकार जब लाला बालमुकन्द गुप्त और आचाय द्विवेदी मे 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर व्याकरणिक विवाद छिडा जो हिन्दी साहित्य के इतिहास मे अपना ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इस साहित्यिक विवाद में मिश्रजी ने द्विवेदी जी के पक्ष का समथन किया और 'श्री राघवेन्द्र' के छद्मनाम स लेख लिखा। जबकि मिश्रजी को अन्धकूप में धकेलने मे 'सरस्वती' और उसके सम्पादक आचाय द्विवेदी का विशेष योगदान रहा। द्विवेदी जी मिश्रजी की अपेक्षा कही अधिक अहवादी और पूर्वाग्रही थे। अन्यथा वशानुगत विद्वत्ता, सास्कारिता तथा साहित्यिक ऊष्मा मिश्रजी मे द्विवेदी जी से कही अधिक थी। काश! मिश्रजी को भी 'सरस्वती' जैसी पत्रिका का इतनी दीघ अवधि तक सम्पादन करने

1 'सुदशन' प्रथम वष, अक 2, पष्ठ 13
2 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 488
3 शोध प्रबन्ध

अथवा सुदशन' को प्रकाशित और सम्पादित करने का द्विवेदी जी से आधा समय भी मिल जाता तो आज द्विवेदी जी और मिश्रजी की साहित्यिक छवि मे बहुत अन्तर होता। आज अधिकाश साहित्य कोशो तथा सन्दभ ग्र थो मे मिश्रजी का परिचय भी नही है और यदि है तो केवल नामोल्लेख मात्र और वह भी पर्याप्त भ्रामक। यथा मिश्रबन्धु-विनोद'।

मिश्रजी के स्वभाव की ओजस्वी स्पष्टवादिता

मिश्रजी स्वभावत भारतीय सस्कृति के प्रति अपने अति लगाव के कारण पाश्चात्य विषयानुरागी तथा भारतीय जीवनदृष्टि की उपेक्षा करने वाले व्यक्ति से उलझ पडते थे—चाहे उन्हे इसका कितना ही मूल्य चुकाना पडता। इसके साथ ही स्पष्ट वादिता मिश्रजी के स्वभाव और व्यक्तित्व की दूसरी प्रखर विशेषता थी। मिश्रजी जो कुछ कहते थे, साफ और बेलाग होता था। मिश्रजी ने अपने आचाय गुरु श्रीराम शास्त्री कृत तुरीय मीमासा की भी कटु आलोचना कर डाली थी। 'भारत धम महामण्डल' के सर्वेसर्वा स्वामी ज्ञानानन्द ने अपने आपको शिव अवतार सिद्ध करना चाहा और 'मधुसूदन सहिता' पुस्तक प्रकाशित कर उसे महामण्डल द्वारा सचालित मध्यमा' परीक्षा के पाठयक्रम मे स्वीकृत करा दिया। मिश्रजी इस अनौचित्य को सहन न कर सके और स्वामी जी के साथ अपने सम्बन्धो को ताक पर रख सत्य की रक्षाथ, दोनो की कटु किन्तु युक्तियुक्त आलोचना की तथा 'मधुसहिता' को पाठयक्रम से बहिष्कृत कराके ही दम लिया। ऐसा ही प्रकरण प० दीनदयालु शर्मा के साथ घटित हुआ। जब व्याख्यान वाचस्पति प० दीनदयालु शर्मा ने दरभगा नरेश के साथ मिलकर अथ सचय किया और फिर विलासिता की ओर उन्मुख हो गये।[1]

मिश्रजी के व्यक्तित्व की प्रखरता के अनेक प्रसग हैं जिसमे लाड कजन के दिल्ली दरबार के अवसर पर कश्मीर नरेश महाराज प्रतापसिंह के एक धम सम्बधी प्रस्ताव का भरी सभा मे यह कहकर विरोध करना कि 'श्रीमान कश्मीर नरेश नराधिपति नरेश है किन्तु धर्मेश नही।[2] तथा मारवाडी समाज मे समादृत और सम्मानित होते हुए भी मारवाडी समाज मे व्याप्त उन कुरीतियो का जिनका अन्य अनेक ब्राह्मण स्वाथवश पालन तथा अनुमोदन कर रहे थे मिश्रजी ने तीव्र विरोध किया। 'सीठने और मेहदी' लगवाने के विषय मे मारवाडियो से निवेदन' शीर्षक लेख लिखा जिसका मूल स्वर था "जो लोग स्त्री जाति के हितैषी समाज के शुभचिन्तक और मर्यादा के रक्षक है, उनका यह कत्तव्य है कि वे विवाह आदि मे गन्दे सीठन गाने और ब्राह्मणियो से पैरो मे मेहदी लगवाने की कुरीति को जहा तक हो सके, शीघ्र बन्द कर दें।"[3] इस लेख की

---

1 'सुदशन के तीसरे वष के अको मे चित्रो द्वारा भी इसे उजागर किया गया है।

2 आधुनिक हिन्दी का आदिकाल पृष्ठ 107-108

3 'वैश्योपकारक', वष 1, सख्या 10, पृष्ठ 291

'वैश्योपकारक' कार्यालय ने 2000 प्रतियाँ छापकर वितरित की। मित्रो के आग्रह पर मिश्रजी ने इस विषय पर एक ओजस्वी भाषण भी दिया। इस सम्बन्ध मे 'सक्राति' के अवसर पर 'वैश्योपकारक' मे 'सक्रान्ति और सीठने' शीषक से एक निवेदन भी प्रकाशित हुआ जिसे सन्देश कहना अधिक उपयुक्त होगा। उन दिनो पत्रकारिता मे ऐसे लेख निवेदन तथा सन्देश आदि का अपना ही महत्त्व था। इस सम्ब ध मे मिश्रजी के व्यक्तित्व और लेखनी का महत्त्व सरस्वती' पत्रिका से उद्धृत इस टिप्पणी से उजागर हो जाता है जबकि 'सरस्वती' मिश्रजी के व्यक्तित्व और कृतित्व को उदघाटित करन मे सवथा मौन धारण किये रही—"मारवाडियो से निवेदन'। 'सुदशन के सम्पादक प० माधव प्रसाद मिश्र लिखित, 'वैश्यापकारक' कार्यालय से वितरित। मारवाडियो के यहा विवाह मे गालियाँ गायी जाती है और ब्राह्मणो की स्त्रियो से पैरो मे मेहदी लगवायी जाती है। इस कुरीति को उठा देने के लिए यह निवेदन किया गया है। मारवाडियो को चाहिए कि वे उसे उठा दे। इसके उठान मे उनकी बडाई और रखने मे बुराई ही नही, अपितु निन्दा है।"[1]

प० माधव प्रसाद मिश्र स्वभाव से ही दभ, आडम्बर तथा दिखावे से घृणा करते थे। वे पाश्चात्य विचारको के 'पब्लिक लाइफ' और प्राइवेट लाइफ' सिद्धान्त के घोर विरोधी थे। इस सिद्धान्त को मिश्रजी हिन्दू जीवन दशन के विपरीत समझते थे। स्वभाव की स्पष्टवादिता, सस्कारो की धार्मिकता तथा विचार और चिन्तन की दृढता के अनेक उदाहरण मिश्रजी के जीवन से उद्धृत किये जा सकते है। यथा—काशी के ठाकुरदास गुप्त कृत 'स्वार्थान्य प्रकाशिका जिसमे ब्राह्मण विरोधी मत ही व्यक्त नही किया गया था, अपितु अश्लील गालिया तक दी गयी थी और भिनगा नरेश के आर्थिक सहयोग तथा प्रेरणा से काशी के पण्डितो से दक्षिणा के बल पर पुस्तक के पक्ष मे पर्याप्त हस्ताक्षर भी करा लिये गये थे। इस सम्बन्ध मे एकमात्र मिश्रजी ने राजपूत को नेक सलाह'[2] लेख द्वारा पुस्तक तथा लेखक और उसके प्रेरक की अच्छी खबर ली थी।

अपने स्वभावगत उपयु क्त गुणो के कारण जहा मिश्रजी ने सिद्धान्त और लोकहित की दृष्टि से अपने और पराये का भेदभाव भूलकर जिन लोगो की आलोचना की और उन्हे अपना विरोधी बना लिया जिसके परिणामस्वरूप उन्हे पर्याप्त हानि भी उठानी पडी। किन्तु इसके साथ ही इन्ही गुणो के कारण उन्हे अनेक महानुभावो के स्नेह भावन और सम्मान का पात्र बनने का सौभाग्य भी मिला। दरभगा नरेश का उनके साथ मित्रवत् व्यवहार था। तीथयात्रा पत्र इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। उनके हितैषी तथा मित्रो की एक लम्बी सूची है। उनमे कतिपय नाम अपने समय और अपने-अपने क्षेत्र की श्रेष्ठता के प्रतीक हैं यथा— व्याख्यान वाचस्पति प० दीनदयालु शर्मा (धार्मिक), बाबू फूलचन्द हलवासिया (धनाढ्य), साहित्याचाय प० अम्बिकादत्त व्यास (काशी),

---

1 सरस्वती, भाग 6, सख्या 5, पृष्ठ 189

2 माधव मिश्र निबन्धमाला, पृष्ठ 34

प० शकरदास शास्त्री 'पदे (बम्बई), प० रामचन्द्र वेदान्ती (दिल्ली) राय बहादुर बाबू जालिमसिंह पोस्टमास्टर जनरल (ग्वालियर राज्य) तथा फैजाबाद के वकील बाबू बलदेव प्रसाद, आचाय नरेन्द्र देव[1] के पिता, आज के वरिष्ठ तथा वयोवृद्ध साहित्यकार श्रीनारायण चतुर्वेदी के पिता स्व० पण्डित द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी आदि विविध वर्गीय मित्र मण्डली मिश्रजी के बहुमुखी व्यक्तित्व का प्रमाण हैं।

श्रीमान दरभगा नरेश महाराज रामेश्वरसिंह बहादुर धमसम्बन्धी प्राय सभी कार्यों मे मिश्रजी से परामश लिया करते थे। ब्रह्मपदलीन स्वामी रामतीथ महाराज के साथ मिश्रजी के प्रगाढ स्नेह सम्बन्ध थे। स्वामी रामतीथ के असमय गृहस्थी त्याग कर सन्यास लेने पर मिश्रजी ने क्षुब्ध होकर युवा सन्यासी' शीषक मार्मिक कविता लिखकर उनकी भत्सना की थी। स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती महाराज, जगदगुरु श्रीमद् शकराचाय तथा श्रीमन्माधवतीर्थ महाराज के मिश्रजी विशेष कृपापात्र थे। लोकमान्य बाल गगाधर तिलक से मिश्रजी की बहुत घनिष्ठता थी और वे उनके विचारो के समथक थे। मिश्रजी के विशेष उद्योग से लोकमान्य तिलक दो बार कलकत्ता पधारे।[2] इनके अतिरिक्त साहित्यिक मित्र मण्डली मे बालकृष्ण भट्ट प० गोविन्द नारायण मिश्र, बाबू बालमुकुन्द गुप्त, श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, प० सखाराम गणेश देउस्कर तथा मैथिलीशरण गुप्त के नाम उल्लेखनीय है।

धार्मिक सस्कार और स्वाभाविक समाज सुधार की भावना की प्रेरणा से मिश्रजी ने पर्याप्त यात्राएँ की। बद्रीनाथ, जगन्नाथपुरी सेतुब ध रामेश्वर और द्वारिकापुरी की यात्राएँ की। ये यात्राएँ वैयक्तिक नही थी, अपितु ये हलवासिया परिवार के साथ एक धार्मिक मण्डली के रूप मे की गयी और स्थान स्थान पर धार्मिक सभाओ का आयोजन करते हुए धम स्थानो पर होने वाली कुरीतियो का विरोध कर उन्हे समूल नष्ट करने के प्रयास किये गये। व्यक्तिगत रूप स भी मिश्रजी की प्रकृति भ्रमणशील थी जिसके फलस्वरूप प्रयाग, अयोध्या, काशी, मथुरा, वृन्दावन तथा शिमला आदि उनके लिए घर जैसे ही बन गये थे।[3] बम्बई और लाहौर की भी मिश्रजी ने यात्रा की। मिश्रजी स्वभाव से पूण भारतीय थे। देश के प्राचीन गौरव, धम और सच्चे साधु-सन्तो के प्रति उनके मन मे बडी आदरभावना थी। सन्त महात्माओ विद्वान् पुरुषो तथा गुणी सज्जनो का यशोगान करना और उनके सद्गुणो की रक्षा के प्रति उनकी लेखनी अन्त तक सजग बनी रही।

---

1 आचाय नरेन्द्रदेव का बचपन का नाम आशीर्वाद लाल था। उनका नामकरण तथा यज्ञोपवीत सस्कार, मिश्रजी ने ही सम्पन्न किया था। वे मिश्रजी को अपना यज्ञोपवीत गुरु मानते थे। शोधप्रबन्ध, पृष्ठ 56 तथा आधुनिक हिन्दी का आदिकाल, पृष्ठ 106-107

2 भारतीय दशनशास्त्र की उपक्रमणिका, पृष्ठ 20-22

3 भारतीय दर्शनशास्त्र की उपक्रमणिका, पृष्ठ 18-19

मिश्रजी का स्वदेश-प्रेम, समाज-सुधार तथा दृढ-चरित्र

मृत्युशैया पर पडे हुए भी देश और देशहित के लिए मिश्रजी का आर्त्तनाद उनके स्वदेश प्रेम का परिचायक है। उन्माद की अवस्था मे भी वे देश की दुदशा के प्रति चिन्तित दिखायी देते थे। आधुनिक विचारको के दृष्टिकोण से असहमति का परिणाम उन्हे अपनी उपेक्षा के रूप मे भुगतना पडा किन्तु वे जीवन-पयन्त अपने दृढ चरित्र, निर्लोभ वृत्ति निर्भीकता, स्पष्टवादिता, स्वाभाविक देश प्रेम और अपने स्वाभिमान की रक्षा मे आर्थिक अभाव से लडते हुए भी सफल रहे। वे टूट गये किन्तु झुके नही। मिश्रजी ने 'सुदशन' तथा 'श्री राघवे द्र मे जब भारत धम महामण्डल के महाम त्री प० दीनदयालु शर्मा का भण्डा फोड किया तब प० दीनदयालु शर्मा ने मिश्रजी की आर्थिक स्थिति पर चोट करते हुए कहा, "रुपये हम तब देंगे जब तुम रिपोट का सशोधन कर दोगे"। इस पर माधव प्रसाद मिश्र का उत्तर था कि "मैने आज तक जो काम किये हैं, वे सब शक्ति को विचार कर किये है, घर को देखकर नही।"[1]

मिश्रजी मर्यादित सुधारवाद के पोषक थे। उनकी दृष्टि किसी विषय विशेष तक सीमित न थी। उन्होंने मारवाडी समाज का ही नही, अन्य वर्गों तथा दिशाओ मे भी सुधार के क्षेत्र मे महत्त्वपूण योग दिया। राघवेन्द्र की एक टिप्पणी मे लिखा है, "हिसार प्रान्त मे सामाजिक सशोधन मे भी परिश्रम मिश्रजी ने किया, उसका फल अभी तक उस प्रान्त के लोग उठा रहे हैं। वैश्याओ के नाच गाने आदि की कितनी ही कुरीनिया मिश्रजी ने बन्द करायी और दृढतापूवक समाज का सशोधन किया। उस प्रान्त मे जिन लोगो ने विधवा विवाह करके समाज मे गदर मचाना चाहा था, उनको मिश्रजी ने जातिच्युत करके पचायती बल बढाया। ऐसे कामो मे कई बार दुष्टो ने उन्हे मार डालने तक की धमकी दी थी। पर वे भयभीत न हुए और न अपने कत्तव्यपथ से ही विचलित हुए। वे अपने सिद्धान्त के बडे पक्के थे। उनके दृढनिश्चय का एक उदाहरण यह है कि जो मित्र अपने यहा विवाह आदि के अवसर पर वैश्याओ का नाच गाना कराते थे, वे उनके लाख आग्रह करने पर भी न जाते थे। इसके लिए उन्हे आर्थिक हानि भी उठानी पडती थी।[2]

उपयु क्त विवेचन से स्पष्ट है कि मिश्रजी की जीवन दृष्टि निस्वाथ थी। उनके मन में देश तथा समाज के निर्माण की प्रबल वेदना थी। वे केवल ब्राह्मण या वग विशेष के पोषक व पक्षधर न थे अपितु भारतीय जीवन दशन के पोषक थे जिसके फलस्वरूप वे दूसरे वर्गों के हिताहित का भी पूण ध्यान रखते थे। उनके दहावसान पर प० किशोरी लाल गोस्वामी के कतिपय शब्द मिश्रजी के उपयु क्त विचार के प्रबल प्रमाण है। "मिश्र जी कलकत्ता से अपने घर भिवानी चले गये और वही रहने लगे। इधर महाराज दरभगा नरेश और स्वामी ज्ञानानन्द जी के बुलावे कलकत्ता और काशी से बराबर आ

---

1 श्री राघवेन्द्र, वर्ष 2, अक 7, पृष्ठ 232

2 श्री राघबेन्द्र, वर्ष 3, अक 4 पृष्ठ 340

रहे थे और उधर हरियाणा के गावो मे जाट जाति तथा जनेऊ को लेकर बडा समाज विप्लव खडा हो रहा था और उसक प्रतिकार के लिए जाट-मण्डली मिश्रजी को आदर पूवक बुला रही थी।'[1]

प० झाबरमल शर्मा के मतानुसार कलकत्ता मे मिश्रजी 76, तुलापट्टी (सप्रति काटन स्ट्रीट) मे गणेशदास जयरामदास की गद्दी मे रहते थे। इसके स्वामी हलवासिया वशज थे। अपने समय मे यह एक ख्यातिप्राप्त स्थान था। इस गद्दी के पहले तल्ल पर मिश्रजी और उनके देहावसान के उपरान्त उनके अनुज प० राधाकृष्ण मिश्र के निमित्त एक कमरा सदैव सुरक्षित रहता था। इस कमरे मे एक तख्त पडा रहता था जिस पर श्वेत चादर बिछी रहती थी। इस गद्दी के तीसरे तल्ले पर एक ठाकुरबाडी और भिवानी के प० शिवनारायण चौधरी का वासा (भोजनालय) था। ठाकुरबाडी के पुजारी प० रामदयाल, राणौली के रहने वाले थे। यही एक अलमारी मे प० भूरामल वैद्य भी अपना औषधालय चलाते थे।[2]

मिश्रजी का जीवन-निर्वाह

प० माधव प्रसाद मिश्र के जहाँ अनेक मित्र प्रशसक, हितैषी और भक्त थे, वहाँ उनके शत्रु, निन्दक तथा विद्वेष रखने वाले ईर्ष्यालुओ की भी कमी न थी। किन्तु मिश्रजी इस निन्दा स्तुति के प्रति तटस्थ भाव रखते हुए अपने काय मे सलग्न रहे और अपने स्वाभिमान के प्रति प्रतिपल सचेष्ट रहे। स्वाभिमानी व्यक्ति के लिए दीनता प्रदर्शित करना सम्भव नही होता। मिश्रजी ने आर्थिक विषमताओ से झूजत हुए व्यक्तिगत लाभ तथा सुविधा के लिए किसी से याचना नही की जबकि उनके सकेतमात्र से उन्हे आर्थिक सकट से मुक्ति मिल सकती थी। उनके जीवन निर्वाह का क्रम प्राय अनिश्चित तथा अनियमित ही रहा। उनका कायक्षेत्र भिवानी की अपेक्षा काशी और कलकत्ता अधिक रहा। मिश्रजी ने जीवनपयन्त किसी की अधीनता मे काय नही किया, स्वतन्त्र लेखन ही उनकी वत्ति थी। भ्रमण के साथ धम-प्रचार करते हुए उनके भक्त और श्रद्धालु सज्जन व्यक्तिगत रूप से उन्हे जो भेंट आदि देते थे, उसी से वे अपना सादा जीवन-निर्वाह करते थे क्योकि भिवानी, जयपुर काशी, लखनऊ तथा कलकत्ता आदि से लिखित सामग्री तथा वैयक्तिक साक्षात्कार से भी इस सम्बन्ध मे निश्चित आजीविका उपाजन का प्रमाण नही मिला। मिश्रजी के दशन तथा नैकट्य प्राप्त करने वाले दो महानुभाव पण्डित झाबरमल शर्मा (जयपुर) तथा श्रीनारायण चतुर्वेदी (लखनऊ) भी इस दिशा मे मौन है।

'सुदशन' का प्रकाशन

उन्नीसवी शताब्दी के अन्तिम चरण मे राजनीतिक परिस्थितियो की प्रेरणास्वरूप सामाजिक परिवेश की अभिव्यक्ति के लिए, भारतीय मनीषी पत्रकारिता की ओर

1 'श्री राघवेन्द्र', वर्ष 3, अक 4, पृष्ठ 340
2 दैनिक कलकत्ता समाचार के भूतपूव सम्पादक से साक्षात्कार।

उन्मुख हो रहे थे। अपने विचारो तथा युगीन भाव प्रकाशन के लिए यह एक कठिन किन्तु प्रभावशाली माग था। युगचेता और युगनिर्माता कठिनाइयो से नही घबराते अपितु कठिनाइयाँ उन्हे और प्रोत्साहित करती हैं। प० माधव प्रसाद मिश्र का अन्त करण भी इस दिशा मे उन्मुख हुआ और उन्होने अनेक आर्थिक सकटो मे फँसे होने पर भी 1899 के आसपास सुदशन' मासिक पत्र के प्रकाशन की योजना बना डाली। लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकार बाबू दवकीनन्दन खत्री से विचार विनिमय कर लहरी प्रेस से 'सुदशन' के मुद्रण की योजना बनायी। इस योजना को क्रियान्वित करने के लिए मिश्रजी ने लहरी प्रेस, बनारस से प० दीनदयालु शर्मा के साथ पत्र व्यवहार किया। एक पत्र, जो सम्भवत सन् 1899 के 26 दिसम्बर को लिखा गया होगा, (पत्र मे दिनाक के स्थान पर 26-12-18 लिखा है और आगे के अक्षर मिट गये है), से मिश्रजी की योजना का स्पष्टीकरण हो जाता है—"यदि आप कृपा करके धर्माथ वा इनाम अथवा पुरस्कार ऋणस्वरूप मे इस समय 200 रुपये भेज दे तो अखबार यहाँ से शीघ्र ही निकालू। जनवरी के अक मे देरी नही, जो कुछ आपको भेजना हो, मेरे नाम यही सीधा भेजिए। मै यही ठहरूँगा और पत्र निकालूगा। पत्र हमेशा बाबू देवकीनन्दन जी के प्रेस मे और यही से प्रकाशित होगा। नफा नुकसान सब आधा आधा। चार सौ ग्राहक होने से खर्चा वसूल होगा और अधिक से लाभ। अधिक क्या लिखू। मै कायक्षेत्र मे अवतीण हो चुका, अब आपकी प्रेरणा और यथाथ उत्साह दान की आवश्यकता है। मैने बडी भूल की जो उस समय आपसे दस ही रुपये लिये। यहा रुपये की बडी जरूरत है, गौड स्वामी और विशुद्धानन्द जी की जीवनी तैयार हो रही है।'[1]

इसी सन्दभ मे एक अन्य लम्बा पत्र जो दिनाक 10-2-0 को लिखा गया, की क्रम सख्या 16 मे मिश्रजी ने लिखा है कि " 'सुदशन' को यदि 200 रुपये मुद्रा का ऋण दिला सके तो दिलावे और योग्य पुरुषो, सभा और गजट की नामावली पहुँचावे। और यह सब न कर सके तो यह आशीर्वाद ही देते रहे और यह बतलावें कि आप प्रसन्न कैसे हो?" क्रम सख्या 17 मे लिखा है, 'हमारा कुछ ख्याल न हो, पर बालमुकुन्द के आयुष्मान के विवाह का ख्याल रखना। मै ब्राह्मण हूँ, अन्यत्र भी माग सकता हूँ।" मिश्रजी के इन दो उदाहरणो से उनकी आर्थिक स्थिति का ज्ञान भली भाति हो जाता है और साथ ही उनके स्वभाव, स्वाभिमान तथा भाषा-प्रयोग, भाषाधिकार, व्यग्य और चारित्रिक दृढता के स्पष्ट दशन होते हैं। पत्रकारिता के इतिहास मे यह युग लोहे के चने चबाने के समान दुष्कर काय था।

मिश्रजी के परिवार का दायित्व प्राय अनुज राधाकृष्ण मिश्र ही निभाते थे, सयुक्त परिवार था। भिवानी का पुराना मकान जिसमे प० माधव प्रसाद मिश्र के पौत्र श्री सुरेशचन्द्र मिश्र रहते है, को देखते हुए उनकी सुरुचि तथा सम्पन्नता का सहज ही

---

1 प० माधव प्रसाद मिश्र द्वारा लिखे गये पत्रो की टकित प्रतिया, प० दीनदयालु शर्मा के सुपुत्र श्री हरिहरस्वरूप शर्मा, दरियागज, दिल्ली के सौजन्य मे देखने का सौभाग्य मिला।

परिचय मिल जाता है। जिस आर्थिक सकट की चर्चा ऊपर की गयी है, वह उनकी व्यक्तिगत नही थी, अपितु एक सावजनिक हित का काय था जिसके लिए उन्हे ऋण की आवश्यकता थी। कबीर के शब्दो का भाव "मर जाऊँ मागू नही, अपने तन के काज। परकारज के माँगने मोहि न आवे लाज।" मिश्रजी पर अक्षरश घटित होता है।

इस विषय के स्पष्टीकरण के लिए मिश्रजी के पारिवारिक-परिवेश पर दष्टिपात करना असीमीचीन न होगा। सामान्यत यह कुल सम्पन्न ब्राह्मण परिवारो की श्रेणी मे गिना जाता था। इनके पितामह आदि बहुत शान शौकत से रहते थे। 16 वष की आयु मे सामणपट्टी की ब्राह्मण कन्या मनभरी देवी से मिश्रजी का विवाह हुआ जिससे उन्हे एक पुत्ररत्न की प्राप्ति हुई। 24 वष की अवस्था मे उनके सिर से पिता श्री रामजीदास का वरदहस्त उठ गया। परिणामस्वरूप परिवार के ज्येष्ठ व्यक्ति होने के कारण परिवार का पूण दायित्व मिश्रजी पर आ पडा। अपने पिता प० रामजीदाम तथा पितामह प० जयरामदास जी से विरासत मे प्राप्त पाण्डित्य, दृढनिश्चय सयम, त्याग, सहनशीलता तथा सन्तोष आदि गुणो के आधार पर वे अपनी पारिवारिक समस्याओ का समाधान तथा उसके दायित्व का निर्वाह करने मे सफल हुए। कालान्तर मे परिवार का दायित्व अपने अनुज प० राधाकृष्ण मिश्र को सौप कर मिश्रजी पूण रूप से साहित्य सृजन और लोकहित के काय मे लग गये। काशी प्रवास के अध्ययन काल मे ही उनका परिचय बाबू देवकीनन्दन जी हुआ। यहाँ से वे कलकत्ता गये, हलवासिया परिवार से उनका सम्बन्ध पितामह प० जयरामदास जी के समय से ही था। आज भी हलवासिया वशावतश स्वनामधन्य श्री पुरुषोत्तमदास हलवासिया अपने पूवजो की भाँति ही स्वर्गीय मिश्रजी का पुण्य स्मरण बहुत ही श्रद्धा के साथ करते है।

उपयु क्त विवेचन से यह भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है कि मिश्रजी का व्यक्तित्व, व्यक्ति के धरातल से बहुत ऊपर था। वे जीवनपयन्त वैयक्तिक सुख-सुविधा की उपेक्षा करते हुए, समाज के उत्थान तथा देशहित मे लगे रहे। प्रोफेसर कल्याणमल लोढा से वार्तालाप करते हुए सेवा निवृत्त माननीय न्यायाधीश श्री रमाप्रसाद मुखर्जी के शब्द द्रष्टव्य है—"ओ प० माधव मिश्र, आमि ताहार कथा सुनेछि। चमत्कार विद्वान् लोक छिलो, ताहार स्मति ही तो सलकियार प० माधव मिश्र विद्यालय—हिन्दीर अनेक व्याज करे गेछे।"[1]

प० माधव प्रसाद मिश्र की चिन्तन दिशा

सामान्यत चिन्ता को चिन्तन का पर्याय मान लिया जाना है जो बहुत ही भ्रामक है। शब्दकोश मे भी चिन्तन का अथ 'सोच' दिया गया है। 'सोच' शब्द का अथ बहुत सकुचित है। व्यक्ति प्राय अपने भविष्य और अभाव के विषय मे सोचता है। उसकी कुछ अपेक्षा और आशाएँ होती हैं। शब्दकोश मे 'चिन्तन' शब्द के शब्द' और 'अर्थ' भेद को अधिक स्पष्ट नही किया गया है। चिन्तन शब्द का फलक बहुत व्यापक है, वह 'स्व' से

1 धमयूग, वष 23, अक 14

ऊपर उठकर 'पर' तक ही नही 'सव' और 'पूण' तक के विषय को अपने मे आत्मसात करता है। विद्या व्यवसायी वग मे अध्ययन, चिन्तन और मनन शब्दो का प्रयोग प्राय होता है। वस्तुत चिन्तन चित्त की चतना की विचारशीलता का गुण है जो अध्ययन से गहन और पुष्ट होकर मनन से दढसकल्प और दिशोन्मुख होता है।

मानव सष्टि का सर्वाधिक सचेष्ट एव सवेदनशील सामाजिक प्राणी है। उसका अस्तित्व समाज सापेक्ष है। समाज स्वत मे कोई पूण पदाथ अथवा इकाई नही है। वह एक अवधारणा मात्र है जो युगीय परिवेश पर निभर करती है। मानव जहा समाज से प्रभावित होता है, वहाँ उस निरूपित भी करता है। मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति समाज और अपने पारिवारिक परिवेश दोनो से विचारदृष्टि ग्रहण करता है क्योकि उसके दैहिक और मानसिक भवन की नीव सवप्रथम परिवार और समाज के मध्य ही रखी जाती है। इनका व्यक्ति के व्यक्तित्व पर निश्चित प्रभाव पडता है और आयु के साथ-साथ विकसित होता जाता है। व्यक्ति के सोचने समझने, उठने बैठने तथा अन्य क्रिया कलापो के द्वारा उसके परिवेश का मूल्याँकन भलीभाँति किया जा सकता है। व्यक्ति की जीवन दृष्टि भी इसी परिवेश से निर्मित और प्रेरित होती है। इसे व्यक्ति का दष्टिकोण अथवा जीवन दशन भी कह सकते है।

मिश्रजी का जन्म प्रकाण्ड पाण्डित्यपूण, सचेष्ट और चिन्तनशील परिवार मे हुआ। उसकी दृष्टि मे लोकहित सर्वोपरि था। देश की तत्कालीन दुदशा के प्रति इस परिवार के मन मे गहरी सवेदना विद्यमान थी। इस दुदशा का कारण अथतन्त्र, राजनीति दशन तथा धम माना जाता था। बतमान विचारको का भी यह स्वीकृत सत्य और मान्य मत है कि समाज के नैतिक पतन का मूल कारण आर्थिक असन्तुलन है। राजनीतिक भ्रष्टा चार, रूढिवादिता और अन्धविश्वास भी इसके लिए उत्तरदायी है। आज देश और समाज के पतन का रोना प्रत्येक विद्वान् और दार्शनिक रो रहा है। राजनेता दुहाई दे रहे हैं किन्तु स्वाथ त्यागकर इसके निवारणाथ कटिबद्ध होकर कोई मैदान मे नही आता। प्राय सभी हवा का रुख देखकर राग अलापते और बहती गगा मे डुबकी लगा कर पुण्यलाभ प्राप्त करने मे लगे हैं।

प० माधव प्रसाद मिश्र का जन्म उन्नीसवी शताब्दी के चतुथ चरण मे उस समय हुआ जब इसाई मिशनरियो द्वारा इसाईयत के प्रचार के विरुद्ध देश मे अनेक सस्थाएँ जन्म ले चुकी थी जिनमे आयसमाज प्रमुख था। पजाब के अचल हरियाणा मे इसाई मिशन तथा मुस्लिम प्रभाव को दूर करने के लिए आयसमाज का प्रचार किया जा रहा था किन्तु निश्चित दिशा और सहयोग के अभाव मे यह प्रचार लक्ष्य भ्रष्ट हो गया। इसका एक कारण यह भी था कि आयसमाज हिन्दुओ पर मुस्लिम तथा इसाई प्रभाव के पडने और उनके धम परिवतन के लिए सनातन धम पर आरोप लगाता रहा। अत अन्धविश्वास और रूढिवादिता की आड मे आयसमाज ने हिन्दू शब्द, हिन्दू भावना और हिन्दू धम का ही खण्डन करना प्रारम्भ कर दिया। उसने सनातन धर्म और सनातन

मतानुयायी लोगो को अपना लक्ष्य बनाया। आयसमाजियो के शास्त्रार्थ इसके प्रमाण हैं जो मौलवियो की तुलना मे पण्डितो से अधिक हुए।

मिश्रजी का परिवार कट्टर सनातनी था, उसके प्रति आस्था और विश्वास उन्हे बिरासत मे मिले थे। उनके चिंतन पर वेद दशन, प्राचीन सस्कृत साहित्य तथा पौराणिक कथाओ का पर्याप्त प्रभाव पडा। सनातन धम पर उनकी आस्था अन्धविश्वास पर आधारित नही थी, अपितु वे उसके सत्य, दशन और शाश्वत मूल्यो की रक्षा भावना से अनुप्राणित और प्रेरित थे। मिश्रजी सनातन धम मे ऐसी स्वस्थ परम्परा तथा धार्मिक वातावरण की कल्पना करते थे जो सवथा निरापद, जनप्रिय और जनहितकारी हो। 'सीठने तथा मेहदी' 'स्वार्थान्ध प्रकाशिका', 'तुरीय मीमाँसा तथा मधुसूदन सहिता' आदि से मम्बन्धित लेख इमके प्रत्यक्ष प्रमाण है। सनातन धम की वर्णाश्रम व्यवस्था के वे कट्टर समथक थे। उसकी मर्यादाओ का उल्लघन उन्हे कदापि सहन नही था। स्वामी रामतीथ के असमय गृहस्थी त्याग की आलोचना इसका प्रमाण है।

प० माधव प्रसाद मिश्र का महाप्रस्थान

यह बात सामान्यत सिद्धान्त रूप मे स्वीकृत सी हो गयी है कि महान पुरुषो और प्रतिभाओ को इस धराधाम पर काय करने का अधिक अवसर नही मिलता। विश्व की अधिकाँश प्रतिभाओ को अल्पायु ही प्राप्त होती रही है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे भी श्री भारतेन्दु, श्री गुलेरी, प० प्रतापनारायण मिश्र तथा बालमुकुन्द गुप्त और आसन्नभूत मे भी ऐसे कई प्रतिभाशाली साहित्यकारो का निधन अल्पायु मे हुआ है। मृत्यु के पश्चात जब कभी ऐसी प्रतिभाओ की साधना का मूल्यांकन किया जाता है तो उनकी अल्पायु के लिए नियति को अवश्य कोसा जाता है। इसका प्रमुख कारण है कि उनके जीवनकाल मे उनके कृतित्व का न मूल्यांकन ही होता है और न उन्हे उचित आदर सम्मान एव स्थान ही मिल पाता है। इसके अपवाद हो सकते है किन्तु अपवाद से न नियम बनते है और न प्रचलित मान्यताएँ खण्डित होती है। ऐसी अल्पायु प्रतिभाओ के कृतित्व मे अनेक सम्भावनाएँ देखी जाती है। इस दष्टि से प० माधव प्रसाद मिश्र को समकालीन, साहित्यकारो, समाज-सुधारको तथा धार्मिक नेताओ मे पर्याप्त सम्मानित स्थान प्राप्त था। उन्हे जितनी ख्याति आदर और श्रद्धा जीते जी मिली, वह विरल है। उनके नाम पर आज भी सलविया मे सत्यनारायण माधव प्रसाद मिश्र विद्यालय' चल रहा है जिसकी स्थापना श्री विश्वेश्वरलाल हलवासिया जी के द्वारा 'माधव मिश्र हिन्दी सस्कृत विद्यालय' के रूप मे मिश्रजी की पुण्यस्मृति के रूप मे की गयी थी। किन्तु गुटबन्दी और अहवादिता ने उनके कृतित्व को पीछे डाल दिया जिसके परिणामस्वरूप आज मिश्रजी अर्चचित साहित्यकार बन कर रह गये।

ऐमे धमनिष्ठ, कतव्यपरायण, स्पष्टवादी, स्वाभिमानी, देशहितैषी, भारतीय सस्कृति और साहित्य के सरक्षक तथा पोषक व्यक्तित्व का निधन 16 अप्रैल, 1907 को दिन के चार बजे हुआ। मिश्रजी की जीवनी पर प्रकाश डालते हुए श्री किशोरीलाल

गोस्वामी ने उनकी मृत्यु का विवरण इन शब्दो मे दिया है—"इस वष काग्रेस और महामण्डल के दिसम्बर वाले जलसे को देख मिश्रजी कलकत्ते से भिवानी चले गये थे और तब मे वही थे। भिवानी मे जब प्लेग फैला, आप वहा से अपने परिवार को लेकर गाँव चले गये। वहाँ चार दिन ठीक रहे, पाचवे दिन तीव्र ज्वर हो गया और तीन दिन प्रचण्ड रहा जो चौथे दिन उतर गया किन्तु फिर पाचवें दिन सन्निपात हो गया। इस कष्ट को दूर करने की पूरी कोशिश की, किन्तु व्यर्थ। अन्त मे 16 अप्रैल, दिन के 4 बजे वे इस ससार को छोड गये। सन्निपात की प्रलापावस्था मे भो उनके मुख से धम और देशहित की बातें निकलती रही।"[1]

मिश्रजी के निधन के सम्बन्ध मे हृदयविदारक पत्र जो प० राधाकृष्ण मिश्र ने प० माधव प्रसाद मिश्र के अनन्य मित्र तथा स्नेही प० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी जी को लिखा और श्री राघवेन्द्र' मे प्रकाशित हुआ उसके कतिपय अश यहा उदधृत है—"मै इस पत्र को उस पवित्र स्थली पर बैठकर लिख रहा हूँ, जहा मेरे पूज्य पितामह आदि पितरो की, जिन्होने जन्मभर मे एक असत्य भाषण नही किया था, समाधि बनी हुई है। और जहा अभी तक मेरे उस आराध्यदेव बडे भाई की चिता प्रदीप्त है जिसकी सचाई को आपका हृदय अनुभव कर चुका है। मै सच कहता हूँ, आज भाई को 12 दिन हो गये, हर समय अबोध बालक, विधवा भौजाई और बूढी मा सामने रहती हैं, इससे कभी पाच मिनट के लिए रोने का अवसर भी नही मिला। स्वप्नावस्था मे वे कई बार दिखायी दिये, उनका स्वर्गीय ज्योतिमय हँसता चेहरा, चन्द्र मण्डल की तरफ मुझे इगित से उगली बुलाता हुआ उधर ही लीन हो जाता है। भिवानी मे प्लेग की कुछ गडबड देखकर हम लोग 5 अप्रैल को सकुटुम्ब कूगड चले आये। भिवानी से 12 कोस उत्तर दिशा मे है, 50-60 से पहले हम लोग यहाँ रहते थे। भाई ने कहा, भौजी के गडबड चलती है, इन्हे पूवजो की जन्मभूमि मे ले चलें, वहा इनका शरीर गिर गया तो भी अच्छा। देहात की तन्हाई मे निबन्ध भी खूब लिखेंगे। यहा आकर चार दिन खूब ठीक रहे बल्कि एक दो सभा भी पास के गाँव मे कर डाली। मरने से पहर भर पहले कुछ काल तक उनको थोडा-थोडा प्रबोध रहा था। उस समय पहचाना और बोले 'किमिच्छसि'। उस समय दीवारें भी रो रही थी। सबके हृदय फटे जा रहे थे।
मैंने पत्थर बनकर कहा 'स्वग के देव, तुम सुखपूवक स्वगधाम मे जाओ। मुझे कुछ इच्छा नही है।' मुझे विशण्ण देखकर बोले 'क्लैव्य मास्य गम पाथ मा शु च सम्पद मसि जानोसि भारत, नहि कल्याण कृत कश्चित।' फिर कुछ देर ठहर कर आपका बाबू फूलचन्द का और दो-तीन बधुओ का नाम लेकर स्नेह और क्षमा' शब्द का उच्चारण किया। मेरी ओर निहार कर बोले, 'मम वत्यानुवतस्य', पीछे थोडी दर चुप रहकर 'तम को मोह क शोक एकत्व मनुपश्यत मानसे मय निताात तामसे नन्दनन्दन। कुतो न लोयसे ओम् कृतोस्मर कृतस्मर इत्यादि श्लोक पढे।"

---

1 श्री राघवेन्द्र, वष 3, पृष्ठ 342

प० माधव प्रसाद मिश्र के निधन पर अनेक साहित्यकारो और उस समय के पत्रकारो ने जो श्रद्धाजलिया दी वे उनके व्यक्तित्व की प्रखरता तथा कृतित्व की गरिमा की द्योतक हैं। उदाहरणाथ, यह अश यहाँ उद्धृत है—प० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी, मिश्रजी की मृत्यु से हि दी का गौरव नष्ट हो गया, हि दी साहित्य की वाटिका पर वज्रपात हुआ और हिन्दी पत्र सम्पादको की मण्डली का एक ओजस्वी विद्वान् स्पष्ट वक्ता और मार्मिक लेखक खो गया। मिश्रजी की अनुपस्थिति से स्वतन्त्र विवेचना विवेक-शू य हो गयी। हिन्दू इतिहासो की प्रामाणिकता अपूण हुई और पाण्डित्यपूण वाद विवाद की इतिश्री हो गयी। हा! माधव प्रसाद जी अपने विचारो पर अटल, अचल रहकर मदान्ध धन वालो को अब कौन खरा उपदेश सुनावेगा ? स्वाथपूण देश के नेताओ के उच्छृ खल सिद्धातो के स्वाथपूण भ्रमो का अब कौन उदघाटन करेगा ? विश्वविद्यालय के लिए प्रभावशाली लेखो से चन्दा कौन बढवावेगा ? . मिश्रजी क्या आप ब्रह्मपदलीन स्वामी रामतीर्थ को उनके प्यारे देश की दु ख कहानी सुनाने गये है ? क्या आप इस सयुक्त प्रात के नेताओ की शोचनीय दशा प्रकाश करन के लिए प० अयोध्यानाथ के समीप गये हैं ? क्या आपने धम व्याख्याओ की मिट्टी पलीत होते देख साहित्याचाय प० अम्बिकादत्त व्यास, श्री रामचन्द्र वेदाती को देहा तर द्वारा इस देश मे भेजने के लिए यह यात्रा की है ? यदि यह भी नही है तो काशी सम्प्रदाय मे सुलेखक पण्डितो का अभाव देख स्वामी राममिश्र शास्त्री को उपालम्भ देने की आवश्यकता समझी है ? मिश्रजी सच सच बतलाइए क्या कारण है कि आप इतनी जल्दी यहा से चले गये ।”

2

पं० माधव प्रसाद मिश्र का कृतित्व

प० माधव प्रसाद मिश्र का आविर्भाव नूतन चेतना और नव जागरण काल मे हुआ। इस समय धार्मिक चेतना के साथ सामाजिक सुधार के लिए जनता को जागरूक बनाने की आवश्यकता थी। यद्यपि मिश्रजी के व्यक्तित्व मे धार्मिक भावना का प्राधान्य दृष्टिगत होता है, तथापि समाज के नवोत्थान और सुधारवादी साहित्य के सृजन मे भी उनका पूर्ण योगदान रहा। अत उनका कृतित्व धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक नव जागरण की त्रिधारा मे प्रवाहित हुआ। सामाजिक नवोत्थान के प्रति अपेक्षाकृत अधिक सक्रिय होने के कारण वे साहित्य साधना एव उनके सृजन के प्रति यथेष्ट रूप मे प्रवृत्त नही हो सके। स्वधम के प्रति अति आस्थावान होने के कारण वे उसके सगठन, प्रचार प्रसार और अनुष्ठान आयोजनो के प्रति अधिक सक्रिय रहे। फलत उनके पास समय का सदैव नितान्त अभाव बना रहा। इसका एक दुष्परिणाम यह हुआ कि उन्हे 'सुदशन' पत्र का प्रकाशन थोडे समय के बाद ही बन्द करना पडा। अन्यथा उसका प्रकाशन बन्द होने का कारण अर्थाभाव या उसके पाठको का न होना न था।[1] वस्तुत मिश्रजी के विदग्ध लेख और सम्पादन कला नैपुण्य के कारण 'सुदशन' ने बहुत थोडे समय मे ही अभूतपूर्व लोकप्रियता प्राप्त कर ली थी और उसके अक ढूढ ढूँढ कर पढे जाते थे।[2] इसका प्रकाशन बन्द हो जाने से निश्चय ही हिन्दी साहित्य की बहुत क्षति हुई और नव जागरण के उस काल मे प्रचार और प्रसार का एक सशक्त माध्यम समाप्त हो गया। अथ, समय और सहयोग के अभाव के बावजूद मिश्रजी ने जिस कार्यकुशलता और कठिन परिश्रम के साथ साथ 'सुदर्शन' का प्रकाशन आरम्भ किया था, उसके लिए वे सदैव अविस्मरणीय रहेगे।

'प्रतिभा' के सृजनात्मक और रचनात्मक दो रूप स्वीकार किये जाते हैं। मिश्रजी के कृतित्व मे प्रतिभा के इन दोनो रूपो के दर्शन होते है। साहित्य की अनेक विधाओ के माध्यम से प्रचीन भारतीय मान्यताओ की युगीय उपादेयता की रक्षा के साथ नूतन विचारो का बीज वपन, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक क्षेत्र मे व्याप्त विकृति का

---

1 माधव मिश्र निबन्ध-माला, पृष्ठ 13
2 विशाल, भारत, भाग 12, सख्या 4

निवारण तथा परिशोधन के साथ नव निर्माण की प्रेरणा मिश्रजी की रचनात्मक प्रतिभा का परिचायक है। धार्मिक जागरण और सगठन के लिए प्रचार प्रसार, धमसभाओ की स्थापना, विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय आदि की स्थापना मे योगदान तथा 'सुदशन' का प्रकाशन आदि भी इसी कोटि मे रखे जा सकते हैं। विशेष महत्त्व के इन कार्यो के सम्पादन मे व्यस्त रहने के कारण मिश्रजी अपनी सृजनात्मक प्रतिभा का अभीष्ट विकास न कर सके। फिर भी उन्होने एक कुशल पत्रकार के रूप मे जितना लिखा वह हिन्दी-साहित्य की अमूल्य निधि है। समय समय पर समकालीन पत्रो मे प्रकाशित उनके ओजपूर्ण निबन्ध उनकी सृजनात्मक प्रतिभा का प्रमाण देने मे पूण समथ है।

प० माधव प्रसाद मिश्र मूलत पत्रकार थे और पत्रकार के माध्यम से ही उनके कृतित्व का परिचय हिन्दी-जगत् को मिला। पत्रकारिता के महत्त्व को समझते हुए 'सुदशन' के प्रकाशन, सम्पादन और वितरण के प्रति मिश्रजी ने अपनी जागरूकता तथा कायकुशलता का परिचय देते हुए उसे लोकप्रिय और प्रतिष्ठित बनाने के लिए नानाविध अलकृत भी किया। 'सुदशन' के माध्यम से मिश्रजी ने साहित्य की अनेक विधाओ की श्रीवृद्धि मे योगदान दिया और साथ ही नव विधाओ तथा नव-शिल्प और शैली का श्रीगणेश भी किया।

सामान्यत हिन्दी जगत् (अब तक भी) उन्हे एक निबन्धकार के रूप मे ही स्मरण करता है जबकि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व की विविधता को देखते हुए उन्हे एक निबन्धकार की सीमित परिधि मे रखना किसी भी दृष्टि से उचित नही है। उनका कृतित्व अत्यन्त व्यापक है और उसमे कवि, लेखक, निबन्धकार, कहानीकार, समीक्षक, जीवनी-लेखक, धम, दशन और सस्कृति के चिन्तक, समाज-सुधारक, शैलीकार और भाषाविद् एव आधुनिकतम विधा जैसे 'रिपोर्ताज' के जनक रूप के दशन भी होते हैं। आज आवश्यकता है उनके साहित्य के प्रकाशन, प्रसारण के साथ अध्ययन और मनन के उपरात उसके मूल्याकन की। उपयु क्त विविध विषयो और विधाओ के साथ दो नाट्य कृतिया भी उनकी साधना सीमा मे आती हैं। आज के समान उस समय पत्रकार और साहित्यकार के लिए कोई सीमा-रेखा निर्धारित नही थी। उस समय एक पत्रकार का दायित्व केवल समाचार सकलन और व्यवस्थापन ही नही था, अपितु उसे साहित्य की अनेक अन्य विधाओ का स्पर्श भी अनायास ही करना होता था। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखक मुक्त भाव से स्वीकार करते है कि 19वी और 20वी शताब्दी की सन्धिवेला मे सम-सामयिक पत्र-पत्रिकाओ ने गद्य विधाओ के जन्म और विकास मे महत्त्वपूण योगदान दिया और युगीय चेतना को विविध रूपो मे अभिव्यक्ति प्रदान की। इस दृष्टि से भी मिश्रजी एक कुशल पत्रकार के साथ अपने सामाजिक दायित्व के प्रति पूण जागरूक रहे तथा साहित्य की विविधोन्मुखी साधना द्वारा अपनी कर्तव्यनिष्ठा का पूण परिचय दिया।

मिश्रजी के कृतित्व की ओजस्विता

स्वभावत मिश्रजी देश के अतीत गौरव और उसकी सस्कृति की उपेक्षात्मक आलोचना सहन नही कर पाते थे। उनके व्यक्तित्व की यह एक प्रमुख विशेषता थी। इसी कारण प० महावीरप्रसाद द्विवेदी की पुस्तक 'नैषधचरित चर्चा' की ऐतिहासिकता के साथ हिन्दी साहित्य मे उसकी उपादेयता की प्रशसा करते हुए भी अन्य विद्वानो के समान हृदयगम न कर सके। क्योकि आचार्य द्विवेदी का मत पाश्चात्य विचारधारा से सपुष्ट था। पाश्चात्य विद्वानो का सस्कृत तथा भारतीय सस्कृति तथा दर्शन का ज्ञान अधिकाशत पुस्तकीय था। उनके मन मे भारत और उसके अतीत गौरव, उसकी सस्कृति और सभ्यता के प्रति आत्मीयता का नितात अभाव था अत उनका मत अधिक तर्कसगत, प्रामाणिक और निष्पक्ष नही हो सकता था। मिश्रजी भारत और भारतीयता के अनन्य उपासक तथा उसकी गौरव-गाथा के अनुगायक थे अत पाश्चात्य विद्वानो की उपेक्षा सहन नही कर पाते थे।[1] सर्वप्रथम उन्होने श्री हर्ष के काल निर्धारण सम्बन्धी पाश्चात्य विद्वानो के मत का विरोध किया। पाश्चात्य विद्वान व्यूहलर ने श्री हर्ष का समय बारहवी शती माना और आचार्य द्विवेदी ने उसे स्वीकार करते हुए 'नैषधचरित चर्चा' कर दी। 'नैषधचरित' के टीकाकार भगीरथी का उद्धरण देते हुए द्विवेदी जी के मत का मिश्रजी ने सतर्क खण्डन किया।[2] द्विवेदी जी की इस कृति से मिश्रजी के मतभेद का एक अन्य कारण यह था कि द्विवेदी जी ने 'नैषध काव्य' को जटिल, नीरस, दुर्बोध और अश्लील तथा उसके रचियता को 'गपोडेबाज' तक कह दिया।[3] वस्तुत द्विवेदी जी ने 'नैषध काव्य' का यह मूल्याँकन बेबर साहब के मत से प्रभावित होकर किया था। द्विवेदी जी ने आलोच्य रचना के इन दोषो के अतिरिक्त कतिपय स्थलो पर करुणा का उद्रेक पाया ओर मार्मिक सहृदयता का एकाध उदाहरण भी उन्हे उसमे मिल गया। किन्तु उक्त रचना मे द्विवेदी जी को सारल्य प्राप्त नही हुआ। फलत उसमे उनका मन रसानुभूति नही कर पाया।[4]

वस्तुत उक्त रचना सम्बन्धी द्विवेदी जी की मान्यताएँ परस्पर विरोधी हैं क्योकि किसी भी रचना मे 'कारुणिक' प्रसग हृदयस्पर्शी तो होता ही है, वह पाषाण-हृदय को भी द्रवित करने की क्षमता रखता है। द्विवेदी जी के अनुसार रचना मे 'मार्मिक सहृदयता' तो है किन्तु 'सारल्य' नही है। यहाँ 'सारल्य' शब्द से द्विवेदी जी का अभि-

---

1 देखिए हिन्दी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ 488, पाश्चात्य सस्कृताभ्यासी विद्वान् जो कुछ कच्चा-पक्का मत यहाँ के वेद, पुराण, साहित्य आदि के सम्बन्ध मे प्रकट किया करते थे, वे इन्हे खल जाते थे और उनका विरोध ये डटकर किया करते थे। उस विरोध मे तर्क, आवेश और भावुकता सबका एक अद्भुत मिश्रण रहता था।

2 माधव मिश्र निबन्ध-माला, पृष्ठ 16-17

3 वही, पृष्ठ 19

4 वही

प्रेत क्या है, यह स्पष्ट नही होता है। आलोच्य रचना की समीक्षा मिश्रजी ने 'सुदर्शन' के प्रथम वष के छठे अक मे लिखी। मिश्रजी के परवर्ती आलोचको को भी द्विवेदी जी का पक्ष अधिक प्रबल और स्वीकाय न लगा। इस सम्बन्ध मे आचाय रामचन्द्र शुक्ल के शब्द द्रष्टव्य है—"प० महावीर प्रसाद द्विवेदी ने अपनी 'नैषधचरित चर्चा' मे नैषध के कई एक बडी दूर की सूझ वाले अत्युक्तिपूण पद्यो को अस्वाभाविक और सुरुचि-विरुद्ध कह दिया।"[1]

इस विषय पर मिश्रजी ने जिस भाषा शैली का आश्रय लिया है उसका उदाहरण शुक्ल जी के इतिहास मे इस प्रकार मिलता है—"अब रही आपके जानने की बात सो जहाँ तक आप जानते है वहाँ तक तो सब सफाई है। आप जहाँ तक जानते हैं, महाकवि श्री हर्ष के काव्य मे सवत्र 'गाँठें ही गाँठें' हैं और प० श्रीधर पाठक की कविता 'सर्वतोभाव' से प्रशसित है। आप जहाँ तक जानते हैं, आप सस्कृत, हिन्दी, बगला आदि इस देश की सब भाषाएँ जानते है और हम बेबर साहब की करतूत से भी अनभिज्ञ हैं। आप जहाँ तक जानते है श्री हष 'लाल बुझक्कड' को भी मात करता है और बेबर साहब याज्ञवल्क्य के समान ठहरता है। आप जहाँ तक जानते है, हमारे तत्त्वदर्शी पण्डितो ने कुछ न लिखा और अगरेजो ने इतना लिखा कि भारतवासी उनके ऋणी हैं। आप जहाँ तक जानते है, नैषध की प्रशसा तो सब पक्षपाती पण्डितो ने की है और निन्दा दुराग्रह-रहित पुरुषो ने की है। आप जहाँ तक जानते हैं, डाक्टर बूलर, हाल आदि साहबो ने जो कुछ लिखा है, युक्तिपूवक लिखा है और मिश्र राधाकष्ण ने युक्ति शून्य। आप जहाँ तक जानते हैं कि प्रोफेसर बेबर का अभी तक अनुवाद नही हुआ और बेबर साहब का ज्ञान हमे 'नैषधचरित चर्चा' से हुआ है।"[2]

उपयुक्त उदाहरण मे 'आप जहाँ तक जानते हैं' की पुनरावृत्ति व्यग्य की द्योतक है क्योकि अपने मत के प्रतिपादन मे आचाय द्विवेदी ने 'हम जहाँ तक जानते है' वाक्याँश का बहुल प्रयोग किया था। अत मिश्रजी ने तुर्की बतुर्की उसी शैली मे आलोचना की। भारतीयता और उसकी रक्षा का भाव यहाँ भी प्रमुख है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे आधुनिक युग के प्रारम्भ के साथ 'आधुनिक' शब्द और इसके अथ 'नया' का महत्त्व दिन-प्रतिदिन बढता गया। आधुनिक विचार, आधुनिक दृष्टि तथा 'आधुनिक चिंतन' जैसे शब्द प्रचलित हो गये। आज भी अधिकाँश विद्वान् अधिकाश बातो और विषयो मे पुरातन परिवेश की उपेक्षा कर उनका मूल्याँकन आधुनिक दृष्टि से करते हैं। यह आधुनिक दृष्टि योरोपीय विद्वानो की देन है और इसमे बेबर साहब का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। बेबर साहब ने भारतीय साहित्य का विवेचन अपनी ही दृष्टि से किया और नुतनता की झोक मे भारतीय विद्वान् उससे चमत्कृत हो उठे। जबकि बेबर महोदय अपने विवेचन मे अनेक अनर्गल

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 490
2 वही

बातें कह गये। यथा 'महाभारत' का 'बाल्मीकीय' रामायण से पूव का होना 'सीता शब्द का अथ हल से जुती हुई धरती पर बनी रेखाएँ होना, बलराम अर्थात् हलभृत और सीतापति राम का एक ही व्यक्ति होना' आाद। बेबर साहब की उपयुक्त मा य ताओ के आधार पर यह निष्कष निकलता है कि लुटेरो से प्रजा की खेती का बलराम ने रक्षण किया। इसी बात का एक रूपक बाधकर रामायण के विपय में लिखा है कि सीता को राक्षस ने हर लिया और बाद मे सीता के पति राम ने उन्हे खोजकर राक्षसो से छुडा लिया, आदि।

मिश्रजी ने बेबर महोदय के मत का सतक खण्डन करते हुए लिखा है कि "महा-भारत एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है और रामायण एक काव्य ग्रन्थ। किन्तु बेबर साहब ने यह भेद किया ही नही क्योकि बेबर महोदय न अपने देश मे ऐपिक से भिन्न छन्दोबद्ध वा पद्य मे रचित कोई आख्यान ग्र थ इतिहास काव्य देखा ही नहीं, सुतरा योरोपीय पण्डितो ने 'महाभारत' और 'रामायण' देखते ही दोनो ग्रन्थो को केवल 'ऐपिक' काव्य निश्चय कर लिया। बस काव्य ही ठहरा, तब फिर ऐतिहासिकता का उसमे काम ही क्या ?"[1]

इसी प्रकार बेबर साहब ने 'राजतरगिणी' की आलाचना करते हुए लिखा है कि "इसमे हमे शुष्क प्रमाण रहित प्रसगो से कुछ अधिक भी देख पडता है किन्तु यह भी याद रखना चाहिए कि इसका ग्रन्थकर्त्ता इतना इतिहास वेत्ता ही नही था, जितना कि कवि था और उसके अवशिष्ट विषयो मे पूववर्ती ग्रन्थकारो की सहायता ली है। आचाय महावीरप्रसाद द्विवेदी ने भी 'नैषधचरित चर्चा' मे 'राजतरगिणी' के सम्ब ध मे लिखा है कि 'राजतरगिणी' इत्यादि ग्रन्थो का प्रसगवशात् कभी कभी कुछ उपयोग होता है परन्तु इतिहास मे इसकी गणना भा नही हो सकती।"

उपयुक्त दोनो विद्वानो के मत पर चोट करते हुए मिश्रजी ने लिखा कि "हमे आश्चय है तो इतना ही कि बेबर साहब को तो 'राजतरगिणी' शुष्क प्रमाण रहित प्रसगो से कुछ अधिक भी देख पडता है किन्तु उनके अनुगामी द्विवदी जी के मत मे उसका कभी कभी कुछ उपयोग भी होता है। क्या यह सहज बात है ? 'कर फुलेल को आचमन मीठो कहत सराहि' वाह खूब समझे।"[2]

मिश्रजी के मत से पाश्चात्य विद्वानो का महाभारत' को काव्य मानने का प्रमुख कारण है उसका पद्यबद्ध होना। योरोप मे काव्य के अतिरिक्त अन्य विषयों का सृजन प्राय गद्य मे हुआ जबकि हमारे यहा सस्कृत साहित्य मे विज्ञान, गणित, दशन, ज्योतिष तथा चिकित्सा शास्त्र तक की रचना पद्यबद्ध शैली मे हुई है। इसके साथ ही योरोपीय विद्वान् 'ऐपिक' मे सौन्दर्य को प्रधानता देते है। अत 'महाभारत' के सौष्ठव और सौन्दय के कारण उसमे उन्हे काव्य की प्रतीति हुई। मिश्रजी के मत से मैकाले, कार्लाइल

1 'सुदशन', वष 1, अक 11, नवम्बर 1900
2 माधव मिश्र निबन्ध माला, पुरातन खण्ड, पृष्ठ 6

और फ्रासमीसियो मे ला मार्टिन तथा मिशाना के ग्रन्थो तथा अन्य अनेक इनिहास ग्रन्थो मे सौन्दय विद्यमान है। इतिहास मानव जीवन का इतिवृत्त है और मानव चरित्र काव्य का श्रेष्ठ उपादान है। अन उचित रीति से लिखा इतिहास भी सौन्दयपूण हो जाय तो इसमे अस्वाभाविकता क्या है ?[1] इसी प्रकार महाभारत के कालनिर्धारण के सम्बन्ध मे मिश्रजी ने बेबर महोदय के मत का 'मेगस्थनाज' आदि के सन्दभ मे डा० श्वान्वेक, कोलब्रूक और विलमन आदि विद्वानो के मतो का उद्धरण देकर खण्डन करते हुए 'महाभारत' की प्राचीनता सिद्ध की।

इसके पश्चात वैश्य महासभा के महामत्री लाला बैजनाथ, बी० ए० की रचना 'धमविचार' प्रकाश मे आयी। इसकी रचना भारतीय धम तथा वर्णाश्रम की ऐतिहासिकता उसकी सक्षिप्त समालोचना तथा उसमे सशोधन के उपाय सुझाने की दृष्टि से की गयी थी। मिश्रजी ने इस पुस्तक के प्रतिपाद्य विपय नथा शैली की प्रशसा करते हुए उसके दोपो का युक्तियुक्त ढग से विवेचन किया। उन्होने लेखक को वाछित सशोधन करने का सत्परामश भी दिया। यथा—'वेदत्रय' का आशय केवल तीन वेदो से नही है अपितु उनकी रचना प्रक्रिया के कारण उन्हे 'वेदत्रय' कहा जाता है। इसी प्रकार लेखक द्वारा अथववेद सम्बन्धी मत का खडन किया। लाला बैजनाथ ने सामवेद की दो शाखाएँ मानी थी और यजुर्वेद के शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद दो भाग माने थे और शुक्ल यजुर्वेद मे केवल सहिता भाग तथा कृष्ण यजुर्वेद मे सहिता व ब्राह्मण दोनो भाग स्वीकार किये थे। वेद की अनेक शाखाएँ मानते हुए उनमे कण्ठमेत्रायणी और बाजसेनीय शाखा प्रचलित मानी। इस सम्बन्ध मे मिश्रजी सग्रह और विचार से प्रसन्न होते हुए भी विषयगत दोषो की उपेक्षा न सह सके और उन्होने विषय की समीक्षा करते हुए लिखा "लोग जब यह देखेंगे कि जिस पुरुष को वेदो की शाखा का साधारण ज्ञान तक नही, वह पुरुष उनके विद्वान गम्य गहन विषयो पर विचार कर रहा है तो क्या कहेगे ? अस्तु, यजुर्वेद की दो शाखा नही बहुत सी है, सहस्र तो महाभाष्यकार पतजलि ने स्वीकार की है, पर मब नही मिलती। 'कौतुभी' नाम की कोई शाखा नही, 'काथुमी' है। शुक्ल यजुर्वेद मे केवल सहिता भाग ही नही है, उसके जगत् विख्यात 'शतपथ' ब्राह्मण के समान बृहत उपदेशपूण और समालोच्य किसी भी वेद का ब्राह्मण नही है। बेबर साहब इनको बर्लिन मे छपा चुके हैं और अब कलकत्ते से भी 'एशियाटिक सोसाइटी' द्वारा समग्रत प्रकाशित हो रहा है।"[2]

आचाय महावीरप्रसाद द्विवेदी, श्री बेबर, रायबहादुर बैजनाथ, श्री रामशास्त्री आदि विद्वान् और प्रवासिनी बग महिला की रचना 'हिन्दी के ग्रन्थकार' तथा लाला ठाकुरदास गुप्त कृत 'स्वार्थान्ध प्रकाशिका' आदि कृतियो की समालोचना मे मिश्रजी की प्रवृत्ति भारतीय सस्कृति, साहित्य और दशन की रक्षा के प्रति सतर्क और जागरूक

1 माधव मिश्र निबन्ध-माला, पुरातन खड, पृष्ठ 68
2 माधव मिश्र निबन्ध माला, पृष्ठ 23

रही है। प्रत्येक रचना की समालोचना मे उनकी अध्ययनशीलता जिसमे भारतीय विद्वान् और ग्रन्थो के साथ सहयोगी और विरोधी विचारो के विदेशी विद्वानो के ग्रन्थो, मतो आदि के उदाहरणो के प्रचुरमाला मे दशन होते हैं। मिश्रजी की आलोचना मे केवल दोषान्वेषण ही नही होता था अपितु रचना के गुणो की मुक्तभाव से प्रशसा भी की जाती थी। आचाय द्विवेदी से मनोवैषम्य होने पर भी सर बेकन के निबन्धो के अनुवाद की समीक्षा मे उन्होने द्विवेदी जी के काय की प्रशसा भी की। "समालोचना करते समय मिश्रजी जिस प्रकार दोष दिखाने मे नही चुकते थे उसी प्रकार गुण प्रकट करने मे भी उन्हे सकोच नही होता था। साहित्यिक विवाद मे द्विवेदी जी तीव्र समालोचना करने के बाद भी वे उनके गुणो का और उनकी योग्यता का समादर करते थे।

3
निबन्धकार प० माधव प्रसाद मिश्र

हिन्दी साहित्य कोशकार ने हिन्दी निब ध का विकास दिखलाते हुए इसे कथात्मक (आख्यानात्मक), वणनात्मक तथा चितनात्मक—नीन वर्गों मे विभाजित किया है। अग्रेजी आलोचको ने विषयगत (विषयप्रधान) और विषयीगत (व्यक्तिप्रधान) दो भेद किये है। तात्विक तथा वैज्ञानिक दृष्टि से यह मत भी सवथा निर्भ्रा त तथा उचित नही है क्योकि लेखक का व्यक्तित्व, विचार दृष्टि तथा अनुभूति दोनो प्रकार के निबन्धो मे न्यूनाधिक रूप से अभिव्यक्ति पाती ही है। वस्तुत निब ध विधा के वर्गीकरण मे विषय और शैली को दृष्टि मे रखना चाहिए। प० माधव प्रसाद मिश्र के निबन्धो का वर्गीकरण इसी दृष्टि से किया गया है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास मे निबन्ध विधा का जन्म भारतन्दु युग मे तथा विकास द्विवेदी युग मे मानते हुए प्रौढता आचाय शुक्ल की रचनाओ मे स्वीकार की गयी है। आचाय द्विवेदी ने भाषा परिष्कार किया कि तु निबन्ध विधा का वे गाम्भीय नही दे पाये। अत भारतेन्दुयुगीन बालकृष्ण भट्ट प्रतापनारायण तथा लाला बालमुकुन्द गुप्त के निबन्धो के पश्चात् आचाय शुक्ल की निब ध कला का अवलोकन करने पर, इस विधा के विकासक्रम मे एक स्पष्ट व्यवधान तथा विचारात्मक रिक्तता दष्टिगोचर होती हैं। यदि हम पूर्वाग्रह मुक्त होकर, प० माधव प्रसाद मिश्र के निबन्धो का अध्ययन करें तो न कवल व्यवधान का समाधान तथा रिक्तता की पूर्ति होती है, अपितु विकासक्रम की प्राकृतिक प्रक्रिया और शुक्ल जी की भाषा शैली तथा भाव और विचारो के गुम्फन की प्रौढता का प्रामाणिक आधार भी मिल जाता है। वस्तुत भारते दु और शुक्ल युग की निवन्ध-कला के मध्य मिश्रजी के निबन्ध इस विकास कडी के मूलाधार हैं।

मिश्रजी के निबन्धो का सकलन प० द्वारकाप्रसाद चतुर्वेदी तथा प० झाबरमल शर्मा ने माधव मिश्र निबन्धमाला' के रूप मे किया। इस पुस्तक मे 76 गद्य रचनाएँ हैं जिन्हे सम्पादक द्वय ने 9 अध्यायो मे विभाजित किया है। किन्तु विभाजन सर्वांश मे ग्राह्य नही है। इस सकलन मे कतिपय रचनाएँ कहानी खण्ड' के शीषक से भी सकलित है। वस्तुत यह सकलन मिश्रजी की रचनाओ के एक अश का प्रामाणिक दस्तावेज है। हमने मिश्रजी के निबन्धो का विभाजन निम्न प्रकार से किया है जो विषय और शैली की दृष्टि से अधिक समीचीन है—

(1) विचारमूलक
(2) धर्म दर्शन तथा सस्कृतिमूलक
(3) राजनीतिमूलक
(4) जीवनीमूलक
(5) साहित्य विषयक तथा यात्रा सम्बन्धी विवरणात्मक निबन्ध, जिनका स्वतन्त्र अध्ययन यात्रा साहित्य अध्याय के अन्तर्गत किया गया है।

विचारमूलक निबन्ध

विचार बुद्धि अथवा मस्तिष्क की एक क्रिया विशेष है जो प्रत्येक मस्तिष्क मे समान रूप से नही होती। बुद्धिप्रधान व्यक्तियो मे यह विचार प्रक्रिया अधिक तीव्र और प्रखर होती है। केवल सामान्य विचार प्रक्रिया के आधार पर किसी को बौद्धिक व्यक्ति नही माना जा सकता जब तक उसकी तत्त्वभेदी दृष्टि किसी विशिष्ट विचार' तन्तु से आवेष्ठित न हो। इस दृष्टि से मिश्रजी के निबन्धो के साक्ष्य पर उन्हे निर्भ्रान्त रूप से बौद्धिक व्यक्ति कहा जा सकता है। उनके प्राय सभी निबन्धो मे बौद्धिकता की झलक द्रष्टव्य है। उनका विषयवस्तु का निरूपण, प्रतिपादन, विश्लेषण विवेचन अनुपातत विचारमूलक है। उनके कुछ निबन्ध विशुद्ध विचारमूलक निबन्धो की कोटि मे रखे जा सकते है। 'बेबर का भ्रम' और 'श्री वैष्णव सम्प्रदाय' आदि। सामान्यत वैचारिक प्रक्रिया प्रत्येक प्रकार की रचना मे होती है, ऐसी सीमारेखा खीचना सहज भी नही है किन्तु जैसा ऊपर कह चुके है कि अनुपात की दृष्टि से यह वर्गीकरण किया गया है।

'बेबर का भ्रम' और 'श्री वैष्णव सम्प्रदाय' निबन्ध पुरातत्त्व विषयक है। प्रथम के अन्तर्गत मिश्रजी ने महाभारत तथा अन्य भारतीय मान्यताओ के प्रति प्रोफेसर बेबर की खडनात्मक धारणाओ का सतर्क विवेचन किया है। बेबर महोदय ने सस्कृत ग्रथो के रचनाकाल तथा घटनाओ के सम्बन्ध मे भ्रामक बाते लिखी और अधानुकरण मे अग्रणी बौद्धिक दासता की शृखला मे जकडे हमारे अधिकाश विद्वान् उसी स्वर मे राग अलापने लगे। मिश्रजी ने बेबर ही नही, उसके साथ साथ यूरोप के उन विद्वानो को भी मुँह तोड जवाब दिया जो यह सिद्ध करने मे लगे थे कि भारत सदा से ही 'आदान' कर्त्ता रहा है यथा फर्गूसन आदि विद्वानो के विचारो पर व्यग्य करते हुए लिखा है, "फर्गूसन साहब ने किसी पुराने मदिर के भग्नावशेषो मे कुछ स्त्रियो की नगी मूर्तिया देखकर सिद्धात किया कि भारतवर्ष के पुराने समय मे स्त्रिया कपडे नही पहनती थी। इधर मथुरा प्रभृति स्थानो की अपूर्व कारीगरी देखकर विलायती पण्डितो ने स्थिर किया है कि यह शिल्प ग्रीक के शिल्पियो (मिस्त्रियो) का है। बेबर साहब जब हिन्दुओ के ज्योतिषशास्त्र की प्राचीनता को किसी प्रकार खडित न कर सके तब निश्चय किया कि हिन्दुओ को चान्द्र नक्षत्रमण्डल बाविलनीय लोगो से मिला है बावलनियो का चान्द्र नक्षत्र मण्डल कभी भी न था, यह छिपा गये।"[1]

1 माधव मिश्र निबन्धमाला, पुरातत्त्व खड, पृष्ठ 3

बेबर साहब के महाभारत सम्ब-धी मन का खडन करते हुए मिश्रजी ने तीखी भाषा मे लिखा है—"विलायती विद्या का एक लक्षण यह है कि वे लोग 'मूर' भिन्न और क्सिी जाति को गौरवण नही जानते, इसलिए इस देश मे आकर हि दुओ को 'मूर' कहने लगे। इसी प्रकार अपने देश मे 'एपिक काव्य भिन्न छन्दोबद्ध वा पद्य मे रचित कोई आख्यान इतिहास देखा नही सुनरा योरोपीय पण्डितो ने महाभारत और रामायण को देखते ही दोनो ग्रथो को केवल 'एपिक' काव्य स्वीकार कर लिया।"[1]

वास्तव मे योरोप के बहुत से विद्वान् भारत की हिन्दू सभ्यता की प्राचीनता स्वीकारने को तैयार नही थे। अत इसे आधुनिक सिद्ध करने की झोक मे ऐसी अनगल तथा अनैतिहासिक बाते करते रहे हैं। मिश्रजी के शब्दो मे 'वे यत्नपूवक यही प्रमाण किया चाहते है कि भारतवष के सब पुराने ग्रथो मे जो कुछ है, हिन्दू धम विरोधी बौद्ध धम ग्रथो को छोडकर सभी आधुनिक है जो हिन्दुओ के ग्रथो मे जो है सो या तो सम्पूण मिथ्या नही तो अन्य देश से चुराया हुआ।"[2] विदेशी इतिहास लेखको की दष्टि मे भारत ने दूसरे देशो से क्या क्या चोरी की है ? मिश्रजी इस सम्बन्ध मे लिखत हैं, 'कोई महात्मा कहता है कि रामायण होमर के काव्य का अनुकरण है कोई कहता है कि भगवद् गीता बाईबिल की छाया मात्र है। हिन्दुओ को गणित भी दूसरो से मिला है, लिखित अक्षर भी किसी सीमीय जाति से मिले है।"[3] विदेशी इतिहासकारो के मत से तो ऐसा आभासित होता है कि हम भारतीय प्राचीनकाल से ही अन्तर्राष्ट्रीय तस्कर रहे हो। अधुना खोजो के आधार पर योरोपीय अनेक धारणाएँ आज खडित हो चुकी हैं कि तु समय और परिवेश की दृष्टि से इस दिशा मे मिश्रजी का यह काय ऐतिहासिक महत्त्व रखता है।

महाभारत के रचना काल के सम्बन्ध मे बेबर महोदय दो आधारो को लेकर चले। प्रथम 'क्राइसोस्टोम' नामक योरोपीय यात्री जो नाविको से महाभारत की कथा सुनकर गया। और दूसरा आधार है 'मेगास्थिनिस जो ईसापूव तीसरी चौथी शती मे च द्रगुप्त मौय की राजधानी पाटलीपुत्र मे रहा था और उसके यात्रावृत्त मे महाभारत का उल्लेख नही है। इस दिशा मे बेबर साहब ने एक ओर 'पाणिनि' को 'कल का लडका' मानते हुए उनके सूत्रो के अथ का अनथ करते रहे यथा "महान व्रीह्यपाराह्ण गण्डीण्वास जाबाल मार भारत हैलिहिल रौरव प्रवद्धेषु" 6 2 38 जिसके अनुसार व्रीहि आदि शब्दो के पूर्व महत, महान का प्रयोग होता है। इस सूत्र मे आने वाले भारत के पहले यही महान लगाया जाय तो महाभारत बनता है। बेबर महोदय ने महाभारत का उल्टा अथ भारत-वश कर दिया। और पाणिनि की तुलना मे नाविक के शब्दो को अधिक महत्त्व दिया, और दूसरी ओर 'मेगास्थिनिस' के यात्रावृत्त को जिसका आज तक कोई प्रामाणिक

---

1 माधव मिश्र निबन्धमाला, पुरातत्त्व खड, पृष्ठ 3
2 वही
3 वही

आधार नही है। मिश्रजी के शब्दो मे "इस बात को सब जानते हैं कि 'मेगास्थिनिस' का भारत विषयक ग्रथ अब विद्यमान नही है केवल अन्यान्य ग्रथकारो ने उससे जितना जितना अश अपनी-अपनी पुस्तको म उदधत किया था, उसको डा० श्वान्बेक नामक एक आधुनिक पण्डित ने सकलित कर एक स्वतत्र ग्रथ प्रस्तुत किया। यही इस समय मेगास्थिनिस वत्त भारत वृत्तात के नाम से प्रचलित है। उसके ग्रथ का अधिक अश अभी तक विलुप्त है, सुतरा मे उसने महाभारत की चर्चा की है कि नही, यह नही कहा जा सकता।"[1] मिश्रजी स्पष्ट रूप से कहना चाहते है कि बिखरे हुए खडित अशो के आधार पर निणय करना सवथा अनौचित्यपूर्ण है। और उनका यह कथन भी विचारणीय है कि किसी रचना मे किसी कृति या किसी व्यक्ति के नामोल्लेख न होने पर उसके अस्तित्व को नकारना भी तकसगत नही है।

प० माधव प्रसाद मिश्र ने पाणिनि के अनेक सूत्रो के आधार पर महाभारतीय पात्रो के अस्तित्व के साथ 'गोल्डन्टुकर' के मत का उद्धरण देते हुए, पाणिनि का समय ईसा से दस-ग्यारह शताब्दी पूव निश्चित किया है। पाणिनि सूत्रों मे महाभारतीय पात्रो, वशो और घटनाओ का सकेत महाभारत की प्राचीनता का प्रबल प्रमाण है।

बेबर के साथ अन्य यौरोपीय विद्वान महाभारत को कौरव पाण्डवो का युद्ध न मानकर कुरु पाचाल युद्ध को ऐतिहासिक मानते है और पाण्डवो को कवि-कल्पित। मिश्रजी ने अपने प्रबल तर्कों के आधार पर महाभारत यद्ध मे पाचालो के भाग लेने की बात स्वीकारते हुए पाण्डवो की ऐतिहासिकता सिद्ध की है। इसके लिए उन्होने बूर तथा काबुल युद्ध मे सिख सेना का उदाहरण दिया है। उन्ही के शब्दो मे—"लोग जानते है कि अग्रेजो के साथ फ्रास वालो की पुरानी शत्रुता है और इसी कारण उन्होने कई प्रकार से वतमान बूर युद्ध मे सहायता भी दी, तथापि क्या यह फ्रासीसियो और अग्रेजो का युद्ध कहला सकता है, काबुल की लडाई मे जनरल बतूरा के आधीन सिख सेना अग्रेजो की सहायता के लिए गयी थी और उसने अपने पुराने शत्रु अफगानो से युद्ध भी किया था, तो भी क्या वह युद्ध प्रधानत सिख और अफगानो का युद्ध था? कदापि नही। तब फिर महाभारतीय युद्ध को कुरु-पाण्डवो का युद्ध न कहकर कुरु पाचालो का युद्ध कहना कहाँ तक सगत है।"[2] पाश्चात्य विद्वानो के मत का एक वैचित्य और दशनीय है कि वे परीक्षत और जनमेजय को ऐतिहासिक पात्र मानते है किन्तु अजु न को नही। अभिप्राय यह है कि मिश्रजी ने पाश्चात्य तथा पाश्चात्यानुयायी विद्वानो पर जो कटाक्ष किया है, वह पूर्ण प्रमाण तथा तक आधारित और पाण्डित्यपूर्ण ऐतिहासिक दृष्टि का परिचायक है।

श्री वैष्णव सम्प्रदाय

विचार स्वातत्र्य भारतीय मनीषा की मूल प्रकृति रही ह। जिस समय एक ओर ईश्वरवादी दशन बौद्धिक भूख मिटाने का यत्न कर रहे थे, दूसरी ओर अनीश्वरवादी

1 माधव मिश्र निबन्धमाला, पुरातत्व खड, पृष्ठ 8
2 वही पृष्ठ 11-12

बौद्ध तथा जैन दशन से भी आगे वढकर अति भौतिकवादी चार्वाक दशन जीवन और जगत की भौतिकवादी व्याख्या कर रहा था। इस विचार स्वातत्र्य का मूल कारण था कि भारतीय मनीषा पर अधिनायकवादी अथवा रूढिवादी धम का शासन नही था। विचाराभिव्यक्ति की पूण स्वतन्नता थी। मध्य युग के आते आते यह विचार-स्वातत्र्य रूढिवाद मे बधने लगा और आधुनिक पीढ़ी को यही मध्ययुगीन रूढिवाद विरासत मे मिला। प० माधव प्रसाद मिश्र वैष्णव होते हुए भी रूढिवादी वैष्णव नही थे। उन्होने मध्ययुगीन सम्प्रदायो को रूढिवादी कहा है। प्रस्तुत निबन्ध मे उन्होने दो मुख्य प्रश्न उठाये है—

(1) प्राचीन अथवा आरम्भिक वैष्णव सम्प्रदाय का स्वरूप तथा वैष्णव का लक्षण।

(2) मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदाय का स्वरूप तथा रूढिवादी वैष्णव।

मानव स्वभाव परिवतनशील है जिसके परिणामस्वरूप उसके जीवन दर्शन, क्रिया कलाप तथा मान्यताओ मे परिवतन अनिवाय है। परिवतनशीलता प्रकृति का धर्म है। मिश्रजी के शब्दो मे— 'काल के स्वभाव से ज्यो ज्यो मनुष्यो की रुचि का सकोच विकास व उसमे परिवतन होता है, त्यो त्यो उसके धम, विश्वास मत व उपासना मे भी तदनुकूल परिवतन हुआ करता है। एक समय था यहा वैदिक भाग यज्ञ की ध्म और इन्द्र, वरुण, वायु आदि की उपासना हो रही थी, परन्तु अब प्राचीन रुचि के साथ पुरान प्रजा प्रकार ने भी नवीन रूप धारण कर लिया।''[1] प्रस्तुताश मिश्रजी की ऐतिहासिक पकड और चेतना का परिचायक है। इसी सन्दर्भ मे प्राचीन और मध्य युगीन वैष्णवो की तुलना करते हुए लिखते है, ' उस भक्ति (प्राचीन भागवद् भक्ति) के अनुयायियो मे वैसे ही आचरण वाले वैष्णव उत्तम समझे जाते थे, जैसे वेदातियो मे ज्ञानी। आजकल (मध्यकालीन तथा आज की) की भाति निज सम्प्रदाय मात्र के अन्त सारशून्य सिद्धातो के दुराग्रही तिलक मात्र के पक्षपाती शिवद्वेषी और सत्कर्म विमुख लोगो का उस समय की वैष्णव मण्डली मे समावेश नही था। वहा उनकी गणना थी जो अपने ऊँचे विचार और पवित्र आचरण के हेतु जगद्बन्धु समझे जाते थे।''[2]

प्रमुख तुलना तथा उद्धरण से स्पष्ट हो जाता है कि मिश्रजी वैष्णव सम्प्रदाय की अन्त प्रकृति तथा बाह्य रूप का अन्तर स्पष्ट करते हुए, युगीय परिवतन के पक्षधर थे और यह उनके अध्ययन, चिंतन तथा मनन द्वारा पुष्ट विचारो की सशक्त तथा स्वतन्त्रता विचारमूलक सहज अभिव्यक्ति है।

धर्म, दर्शन तथा सस्कृतिमूलक निबन्ध

सामान्यत मानवमात्र किसी न किसी धम का अनुयायी है। भारतीय चिंतन मे चार पुरुषार्थों मे से धम ही प्रथम और प्रधान है। वही अथ का सवाहक है। धम मे

1 माधव मिश्र निबन्धमाला पुरातत्व खड, पृष्ठ 28

2 वही, पृष्ठ 32

धारण करने की क्षमता है। धम ही वह धुरी है जिस पर मानव-जीवन का चक्र निरतर गतिशील रहता है ।

आधुनिक पदाथवादी विचारक मनोविज्ञान के आधार पर धम को भयजन्य तथा अधविश्वास पर आधारित मानते है परन्तु यह विचार एकाकी है। वस्तुत इस मत के विचारको ने धम के रूप मे परम्पराओ और प्रचलित अधविश्वासो से युक्त कुरीतियो को ही देखा है। उसकी मूलभूत आत्मा को पकडने का प्रयास नही किया। आधुनिक भौतिक विज्ञान की विचार दृष्टि मानव देह के स्थूल रूप तथा उसकी स्थूल आवश्यकता के विश्लेषण तक ही सीमित है। भय की भावना सवमान्य और सावकालिक नही है और थोडी देर को इन पाश्चात्य शिक्षाविदो तथा उनके अनुयायियो की बात मान भी ले तो 'धम' के व्यापकत्व मे अतर नही पडता। धार्मिक व्यक्ति स्थूल से न डरकर सूक्ष्म से डरता है जो व्यापक है, शाश्वत है। धर्म, शिवम् का पोषक है। इसी भावना की प्रेरणा से आज भी अनेक सावजनिक कार्य होते है। विश्व मानव के जीवन वृत्त पर दष्टिपात करके देखा जा सकता है कि यह वृत्ति सावभौमिक और सावकालिक हे। यह ठीक है कि समय समय पर धर्मान्ध व्यक्तियो तथा जातियो ने अनेक अमानवीय कृत्य किये है किन्तु तुलनात्मक दृष्टि से इस धम भावना से लोक कल्याण ही अधिक हुआ है। 'धर्म वैयक्तिक रूप मे व्यक्ति को निराशा से बचाता है और उसे भविष्य के प्रति आस्थावान बनाता है। वतमान युग के आकडे आज इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। हम जैसे जसे आधुनिक हुए हैं तथा होते जा रहे है, धम से हमारा सम्बन्ध टूटता जा रहा है और पदाथवाद की भौतिक दृष्टि तथा भोगवाद की प्रबलता के परिणामस्वरूप 'देह-हत्या' की सख्या मे दिन प्रतिदिन वृद्धि होती जा रही है ।

धम की अनेक ऊँची नीची सीढिया है। अनेक प्रकार है जैसे व्यक्ति या देह धम जिसके अन्तगत व्यक्ति केवल इन्द्रीय पोषक बनकर रह जाता है, 'परिवार धम', 'देश या कुल धम', 'जाति धम', 'समाज धम', 'राष्ट्र धम', तथा 'विश्व धम' या 'मानव धम' आदि। व्यक्ति जैसे जैसे इन सीढियो को पार करता है, उसका व्यक्तित्व निखरता जाता है।

पडित माधव प्रसाद मिश्र का व्यक्तित्व धर्मानुप्राणित तथा उनके कम के मूल मे यही भावना प्रबल थी। वे सनातनधर्मानुयायी थ, दुराग्रही और अधविश्वासी नही थे। 'सुदशन' की नीति घोषणा इसका प्रबल प्रमाण है।[1]

धार्मिक दृष्टि से मिश्रजी के निबन्धो मे निम्न विशेपताएँ देखी जा सकती है —

(क) धम का शास्त्रसम्मत मूल भाव तथा व्यापक दृष्टि ।

(ख) धम की दशनमूलक अभिव्यक्ति ।

(ग) प्राचीन ऋषि मुनियो के आधारित विचार।

---

1 सुदशन', 1/2, पृष्ठ 1

(घ) धम के प्रचलित रूप की विकृति पर यथासभव व्यग्य करते हुए सुधार की भावना ।

(ङ) उत्सव तथा त्यौहार आदि के मूल मे धम भावना का समथन ।

इस वग के निबन्धो में— श्रीधम महामण्डल' 'हि दुओ की महासभा', परीक्षा', 'धनि', क्षमा , 'ब्राह्मणो पर वृथा आक्रमण' तथा 'पजाब के धमवीर उठो' आदि की गणना की जा सकती है । इसके अतिरिक्त इस धम भावना से प्रेरित उन्होने अनेक टिप्पणी मूलक लेख भी लिखे जो पत्नकारिता का अनिवाय अग है । उन टिप्पणीमूलक लघु निबन्धो की तालिका निम्नलिखित है —

(1) हिन्दू विधवा सहायक फण्ड
(2) पिजरापोल—वैश्योपकारक, 2/4
(3) क्या वैश्य को आय नही कह सक्ते ? —वैश्योपकारक 2/5
(4) दान की दुदशा—वैश्योपकारक, 2/12

हिन्दू मनीषा आदिकाल से ही धमप्रधान रही है जिसके प्रभावस्वरूप हि दू विचार शरीर की अपेक्षा आत्मा और उसके पोषक धर्मानुष्ठान के सदैव पोषक रहे है ।[1]

हिन्दू धम की मूल भित्ति उसकी रसात्मक अनुभूतिमयी भक्ति मे सवग्राह्य रूप मे विकसित हुई । इसी धर्मभावना का लोक हितकारी रूप हिन्दी साहित्य मे समय-समय पर मुखरित हुआ । आधुनिक युग के आलोचक प्रवर पडित रामचन्द्र शुक्ल का 'काव्य मे लोकमगल की सिद्धा व साधनावस्था' निबन्ध इसी भावना का पोषक है । कविकुलगुरु प्रात स्मरणीय गोस्वामी तुलसीदास जी ने राजनीति विचारको को एक स्वस्थ और सुखद राज्य की कल्पना 'रामराज्य' के रूप मे प्रदान की जिसका मूलाधार 'वरनाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग । चलहि सदा पावहिं सुखहि, नहि भय शोक न रोग' बताया । युगीय चेतना से अवगत मिश्रजी ने धम के इसी सनातन रूप का समर्थन किया । 'श्रीभारतधम महामण्डल' के बारह वर्षो के कार्य का विवरण देते हुए मिश्रजी ने लिखा है, 'सूयमण्डल के प्रकाश होने पर जिस प्रकार मनुष्यो की सोई वृत्तिया जागकर उनको निज निज कृत्य मे प्रवृत्त करती हैं और ब्राह्मणादि चारो वण सन्ध्यादि को करने लगते हैं, ठीक उसी प्रकार इसके उद्यम से भी हिन्दुओ की चिरनिद्रित धम-वासना जागृत हुई है — श्री भारतधम महामण्डल ने वेद पुराणादि प्रतिपाद्य सनातन धर्म की रक्षा का बीडा उठाकर अपने बाल्य चरित्र से ही सनातन धर्मावलम्बियो के समस्त आचाय, परमहस, यती, सन्यासी, विद्वान ब्राह्मण, एव क्षत्रिय-कुल सम्भूत बडे बडे राजा महाराजा और वैश्यावशोत्पन्न दानीधर्मात्मा सेठ साहूकार तथा सेवा-परायण सतशूद्र आदि को निज कतव्य से प्रसन्न कर लिया है ।'[2]

---

1 भारतीय दशनशास्त्र प० माधवप्रसाद मिश्र, पृष्ठ 3 4

2 माधवमिश्र निबन्धमाला, श्री भारतधम महामण्डल, पृष्ठ 2

मिश्रजी भाग्यवाद तथा धर्माधीन अकर्मण्यता के विरोधी और पुरुषार्थ के प्रबल पोषक थे। 'पुरुषार्थ के बिना फल प्राप्ति की आशा करना दुराशा मात्र है। फलसिद्धि के लिए मृत्युपर्यन्त पुरुषार्थ करना ही मनुष्य का मुख्य धर्म है। पुरुषार्थहीन पुरुष का पुरुष कहलाना वैसा ही है, जैसा भस्म का अग्नि के नाम से प्रसिद्ध होना।'[1]

हमारे अधःपतन का कारण सद्धर्म शिक्षा का अभाव, राजनीति से धर्म का बहिष्कार, सामाजिक अव्यवस्था, येच्छाचार, स्वेच्छाचार, विदेश यात्रा को तीर्थयात्रा के समान आदर देना, अंग्रेजी भाषा के प्रति मातृभाषा तथा धर्म भाषा से अधिक सम्मान देना आदि है।[2]

'परीक्षा' लेख मे हिन्दी, संस्कृत, उर्दू तथा अंग्रेजी आदि की उक्तियों का प्रमाण देते हुए इस अनिवार्यता को प्रतिपादित किया है कि इस लोक मे उत्तीर्ण होना ही उत्तीर्ण होना नही है, अपितु अपने चरित्रबल से उस लोक की 'परीक्षा' मे उत्तीर्ण होना अधिक अपेक्षित है। वह परीक्षा अपेक्षाकृत कठिन है। किन्तु अनिवार्य क्योंकि संसार छल छिद्र से भरा है। जिधर देखो, उधर धोखे की टट्टी और आडम्बर का ठाठ दिखाई देगा। - - बहुधा देखा गया है कपट मूर्ति चतुर चूडामणि लोग ही बहुत मधुर भाषण और शिष्टाचार प्रदर्शन करते है, अल्पज्ञ पुरुष ही बडा धोता, बडा पोथा, पण्डिता पगडा बडा' का उदाहरण बनते है। निर्गन्ध कुसुम ही अधिक रंगीला होता है। नया मुसलमान ही अल्ला अल्ला' पुकारता है। भूला पण्डा ही दूनी सन्ध्या किया करता है[3] आदि।

अभिप्राय यह है कि मिश्रजी की धर्ममूलक दृष्टि व्यापक तथा लोकहितकारिणी थी। अतीत का गौरव गान कर, महान् पुरुषो का पुण्य स्मरण कराकर, आधुनिकता की झोंक मे 'स्व' को भूलने से बचाकर भारतीय भावना की रक्षा करना ही इन निबंधो का लक्ष्य रहा।

दर्शन मूलक निबंध

'दर्शन' शब्द की व्युत्पत्ति 'दृश' धातु से है। सामान्य अर्थ मे दर्शन का अर्थ देखना है किन्तु देखना एक शरीर जन्य, एक अंग विशेष की स्थूल क्रिया है और स्थूल आकार-प्रकार की अनुभूति है जबकि 'दर्शन' शब्द स्वतः मे विषय बोधक भी है जो स्थूल नही, सूक्ष्म है। मिश्रजी के शब्दो मे, 'जिस शास्त्र विशेष मे युक्ति द्वारा वक्तव्य विषय समर्थित हो सब लोग उसी को 'दर्शनशास्त्र' कहते है।[4]' दर्शन और धर्म का परस्पर घनिष्ठतम सम्बन्ध है। धर्म दर्शनाधारित होता है। दर्शन से वंचित होने पर धर्म विकृत, रूढिग्रस्त,

1 वही, हिन्दुओ की महासभा, पृष्ठ 6
2 माधव मिश्र निबन्धमाला, सप्तम खण्ड, पृष्ठ 9-12
3 माधवमिश्र निबन्धमाला, सप्तम खण्ड, पृष्ठ 18
4 भारतीय दर्शनशास्त्र, पृष्ठ 110

परम्परा तथा आडम्बर मात्र बनकर रह जाता है। समयानुरूप धम का विवेचन दशन की देन है। श्रीकृष्ण का गीता द्वारा अजु न को अनासक्त भाव से युद्ध कम की प्रेरणा इसका प्रमाण है। दशन को भी धम की अपेक्षा है। धमरहित दशन' केवल शुष्क वाद विवाद का विषय बनकर रह जाता है। वह 'सत्य' रहते हुए भी 'शिवम् मे बहुत दूर हो जाता है। 'दशन' का मूल प्रतिपाद्य है क्या' और इस क्या' का सही तकसम्मत शास्त्रोक्त उत्तर देना ही दर्शन है। वह किसी विषय विशेष तक ही सीमित नही है। किसी भी विषय का यथातथ्य, कारण काय से सिद्ध आत्म सत्य का उद्घाटन ही दशन है। वतमान शिक्षा मे 'ईथिक्स' जिसका सम्बन्ध शिष्टाचार सम्बन्धी व्यावहारिक ज्ञान से है जो अग्रेजी शब्द फलासफी' के रूप मे दशन का पर्याय बन गया है, जो भ्रामक है और इस भ्रम का कारण है पाश्चात्य और भारतीय जीवनदृष्टि के भेद का स्पष्टीकरण न करना, फलासफी' शब्द व्यावहारिक 'विपय के यथार्थ ज्ञान का द्योतक है और 'दशन' आध्यात्मिक 'तत्त्वज्ञान' का प्रतिपादक।

भारतीय दर्शन, विश्वदशन की तुलना मे अधिक पुरातन तथा व्यापक है। भारतीय दशन के मूलत दो भेद किए जाते हैं— आस्तिक और नास्तिक दशन। इनके पुन क्रमश छ छ उपभेद किए गए है जिनके अन्तर्गत वतमान युगीय अत्याधुनिक वैज्ञानिक मान्यताओ की समीक्षा भी की जा सकती है। भारतीय दशन के तीन मूल विवेच्य तत्त्व है— जीव, जगत् और ब्रह्म। ब्रह्म 'सत्', 'चित्' तथा 'आनन्द' का पुजी भूत रूप है। जीव की सृष्टि उसके चित्' से और जगत् की 'सत्' से हुई है। अत अश 'जीव' अपने अशी 'ब्रह्म' को प्राप्त करने के लिए जगत के मध्य भटकता रहता है। इस आत्मिक असतोषपूर्ण भटकन को सत्य पथ की ओर आत्मज्ञान देकर लगा देने वाला विषय ही दशन है। भौतिक ज्ञान और आध्यात्मिक ज्ञान का अन्तर ही विज्ञान और दर्शन का अन्तर है। मिश्रजी के शब्दो मे— 'मोक्ष विषयक बुद्धि का नाम ज्ञान है, शिल्प और शास्त्र विषयक बुद्धि का नाम विज्ञान।'[1]

सामान्यत प्रत्येक व्यक्ति का अपना जीवन दर्शन होता है। व्यक्ति के रूप मे उसे दर्शन न कहकर जीवन-दृष्टि की सज्ञा दी जाती है जिसे व्यक्ति अपने परिवेश तथा अनुभव से अर्जित करता है। किन्तु प्रत्येक दष्टि लोकमान्य हो, यह सभव नही है। जिनके विचार या जो जीवन दृष्टि वैयक्तिक धरातल से ऊँची उठ जाती है, उसे दशन की सज्ञा मिल जाती है। 'सुकरात' से लेकर आज 'रूसो' लास्की, 'रसल' तथा गाधीजी के विचारो को दशन की सज्ञा इसका प्रमाण है। विषय की दृष्टि से दशन के आज कई भेद किये जाते हैं यथा 'राजनीति दशन', 'समाज दशन', 'अथ दर्शन' आदि और इसी आधार पर अनेक वैयक्तिक विचारको के नाम दाशनिको की श्रेणी मे गिने जाते हैं। हमारी दृष्टि मे इस भ्रमात्मकता के दो प्रमुख कारण हैं— (क) भारतीय दर्शन शब्द और पाश्चात्य फलासफी शब्द के मौलिक अतर को स्पष्ट न कर समान अथ मे

---

1 भारतीय दशनशास्त्र, पृष्ठ 111

प्रयोग । 'दर्शन' अध्यात्म, सूक्ष्म, मोक्षविषयक आत्मज्ञान की विवेचना का बोधक है जबकि 'फलासफी' बाह्य जीवन और उससे सबधित भौतिक वस्तुपरक विषय का यथा तथ्य विवेचन तथा व्यवहार ज्ञान का पोषक है ।

(ख) 'दाशनिक' और 'चितक' का एकीकरण 'दर्शन' एक शाश्वत सत्य का उद्घोषक है जबकि 'चिंतन' एक सम सामयिक परिस्थितिजन्य प्रतिक्रिया की प्रक्रिया है।

मिश्रजी भारतीय आस्तिक दर्शन के पोषक थे । भारतीय तथा हिन्दुत्व की भावना से अनुप्राणित उनका व्यक्तित्व, धम और उसकी मूल भित्ति जो समय और परिस्थिति के अनुसार विकत हो रही थी, को पुन अपने अधिकृत रूप मे देखना चाहता था । उ होने किसी दृष्टि विशेष अथवा दर्शन और पक्ष विशेष का प्रतिपादन न कर, समूचे भारतीय दशन की सहज विवेचना, जो उस समय परम आवश्यक थी, पर बल दिया है । मिश्रजी के दर्शन सम्बन्धी निबन्धो मे (क) चार्वाक दशन की भूमिका तथा (ख) तलबकारोपनिषद् (जो केनोपनिषद का ही प्रकारान्तर से दूसरा नाम है) उल्लेखनीय रचनाएँ है । इनके अतिरिक्त 'भारतीय दशनशास्त्र की उपक्रमणिका' प्रथम खण्ड शीषक से एक पुस्तक भी उपलब्ध है । सामान्यत उनकी तत्त्वनिरूपिणी लेखनी दशन का आँचल हर जगह पकडे रहती है ।

मिश्रजी की इन दशन सम्बन्धी रचनाओ मे उनका मूल उद्देश्य था—

(क) शास्त्राध्ययन, अनुशीलन तथा जटिल विषय पर सहज विवेचन (सहज विवेचन का गुण मिश्रजी की रचनाओ मे सवत्र विद्यमान है ।)

(ख) शब्द-व्युत्पत्ति से लेकर अर्थ गाभीय और परिवर्तन आदि की प्रक्रिया का विवेचन ।

(ग) उसकी जीवन सम्बन्धी उपयोगिता ।

(घ) भारतीयता के प्रति आस्था जगाना ।

उपयु क्त गुण मिश्रजी के दर्शन सम्बन्धी रचनाओ मे सवत्र विद्यमान है । 'चार्वाक दर्शन की भूमिका' एक विवेचनात्मक निबन्ध है और 'तलबकारोपनिषद' एक परिचया त्मक लघु लेख । वस्तुत मिश्रजी के व्यक्तित्व के दशन प्रेमी रूप के स्वतत्र दर्शन 'भारतीय दर्शनशास्त्र की उपक्रमणिका' मे ही होते है । जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है कि यह पूर्ण ग्रन्थ नही है अपितु उसकी सयोजना का प्रारूप है । इस सम्बन्ध मे पडित राधाकृष्ण मिश्र का वक्तव्य द्रष्टव्य है— 'हमारा भारतीय दर्शनशास्त्र, सर्वदर्शन-सग्रह का किसी अश मे अनुकरण होने पर भी अनुवाद नही हैं, सर्वथा स्वतत्र ग्रन्थ है । क्योकि उसमे केवल पन्द्रह दर्शनो का सक्षेप मे उल्लेख है और यह अनुमान बीस से भी अधिक खण्डो मे पूरा होगा ० ० ० इसके सपूर्ण खण्ड मे यथोपलब्ध गणपत्यादि प्राचीन दर्शनो के बाद नवीन समय के ब्रह्म समाज, आर्यसमाज, थियोसोफिकल सोसाइटी आदि के दार्शनिक सिद्धातो का भी यथासभव उल्लेख किया जायेगा । ० ० ० भारतीय दर्शन

शास्त्र के प्रत्येक खण्ड मे एक एक दर्शन का पूरा विवरण इस भाँति रहेगा, दर्शन के मूल सूत्र सानुवाद या कारिकाए (यदि मिल सकें) उसके आचार्यों की जीवनी और चित्र, क्रमिक विकास या इतिहास, अन्यान्य दर्शनो से तुलना, माधवाचार्य प्रदर्शित स्वरूप, प्रत्येक आचार्य के अवान्तर मतभेद, समष्टि रूप से विस्तृत और विशद वर्णन इत्यादि। ० ० ० चार्वाक दर्शन के सिवा भारत के यावत् दर्शनो का यूरोप के जड-वाद के साथ आत्मा के विषय मे मतभेद है इसलिए चैतन्यवाद के सम्बन्ध मे पश्चिमी जडवाद के समालोचन की अत्यन्त आवश्यकता थी।'[1]

प्रस्तुत ग्रथ मे दशन शब्द की व्याख्या करते हुए स्वरूप निरूपण के साथ मिश्रजी ने विषय को जिस सागोपाग रूप मे उठाया है वह उनके व्यापक अध्ययन और गहन चितन का परिचायक है। विषय प्रतिपादन मे उपशीषको के द्वारा उसका विभाजन मौलिकता लिए हुए है। विषय तथा युगानुरूप उसका इतिहास, आवश्यकता, पुरातन ऋषियो के मतो का विवेचन, सूत्र, व्याख्या, भाष्य तथा वार्तिका आदि के लक्षण और विवेचन इसका प्रमाण हैं। 53 उपशीषको मे विषय का विभाजन किया है जिन्हे हम अपनी सुविधार्थ निम्न रूप के विभाजन कर सकते हैं —

(क) भारतीय इतिहास के विभिन्न कालो मे दशन का स्वरूप। तथा —हिन्दू-राज्य के समय की शास्त्र चर्चा, मुसलमानो के राज्य समय की अवस्था आदि।

(ख) सामान्य पाठक और दशनशास्त्र — दशनशास्त्र का अध्ययन क्या नीरस और कठिन है ? दशनशास्त्र मे अद्भुत रस है आदि।

(ग) दर्शन का तात्विक निरूपण — ज्ञान और मानसी क्रिया का भेद, मुक्ति हो सकती है, मनुष्य शब्द का अर्थ शरीर है, आत्मा नही। आदि।

(घ) दशन की उपादेयता — प्रवृत्ति और निवृत्ति का कारण, दर्शनशास्त्र के अनुशीलन की आवश्यकता ।

(ङ) 'दशन की व्याख्या और विभिन्न दार्शनिको के मत — दशन शब्द की व्याख्या, नामकरण प्रणाली — माधवाचाय का मत। शाकटायन का मत। गार्ग्य का मत व्यास्क का मत। आदि।

(च) दर्शन के भेदोपभेद — आस्तिक-नास्तिक। षड्दर्शन आदि।

(छ) सूत्र, व्याख्या, भाष्य, वार्तिक या प्रकरण का विवेचन — सूत्र का लक्षण, व्याख्या का लक्षण।

(ज) दर्शन के सदभ मे श्रुति और स्मृति का सम्बन्ध निर्देश।

अभिप्राय यह है कि मिश्रजी ने भारतीय दर्शन की मूल भावना और उसके पक्ष विपक्ष मे ऐतिहासिक तथ्य देकर, उसकी प्राचीनता सिद्ध की जो उनकी भारतीय जीवन

1 भारतीय, दशनशास्त्र की भूमिका, पृष्ठ 70 71

के प्रति दर्शनयुक्त दृष्टि, विशद अध्ययनशीलता के साथ विषयगत पैठ और विषय प्रतिपादन की सहज शली का परिचायक है। आधुनिक और योरोपीय विद्वानो के विषय मे मिश्रजी का मत द्रष्टव्य है— 'योरुप के अधिकाश दर्शन व विज्ञान इस लोक के विषय को लेकर बने हैं, सुतरावे भौतिक हैं। हमारे देश के अनेक विद्यार्थी योरुप के दर्शन व विज्ञान का अध्ययन कर तृप्त रहते है। देशीय दर्शनशास्त्र की ओर उनका ध्यान ही नही। इतना ही नही, उनके विचार से भारतीय दर्शन मे कोई सत्य और चिंता के योग्य विषय ही नही है।'[1]

सस्कृतिमूलक निबन्ध

सस्कृति सस्कार शब्द का भाववाचक रूप है जिसका शब्दार्थ शोधक है। व्यापक अर्थ मे समस्त सीखे हुए परम्परागत व्यवहार से है जो 'सामाजिक प्रथा' का पर्याय है। एक अन्य अर्थ मे सस्कृति उन गुणो का समूह है जिनसे व्यक्तित्व परिष्कृत होता है और इस रूप मे वह एक वाछनीय वस्तु है।[2] मानव एक विकासोन्मुखी प्राणी है और विकास सस्काराधीन हे। मानव स्वभाव की शुद्धता और मूलवृत्ति को जागृत करने और रखने के लिये भारतीय मनीषियो ने गर्भाधान से मृत्युपर्यन्त सोलह क्रियाओ को षोडश सस्कारो का नाम देकर हमारी वृत्तियो को विकासोन्मुखी ही नही बनाया अपितु उन्हे जीवन्तता भी प्रदान की। अत कह सकते है कि दर्शन आत्मा है तो धर्म शरीर और सस्कृति शरीर की भावमूलक क्रिया है। इनके सामजस्य और सन्तुलित सुनियोजन मे ही मानव, मानवत्व को प्राप्त कर सकता है। इसके साथ साथ यह कहना भी असमीचीन न होगा कि 'दर्शन' के 'सत्य' और 'धर्म' के 'शिव' को सस्कृति ही 'सुन्दरता' प्रदान करती है। 'दर्शन' आत्मा के विवेक की सन्तुष्टि करता है, 'धर्म' उसके भाव की तो सस्कृति उसकी अनुभूति को परिष्कृत और सन्तुष्ट करती है। वस्तुत दर्शन, धर्म और सस्कृति परस्पर इतने सश्लिष्ट है कि इनके मध्य विभाजक रेखा खीचना कठिन ही नही असभव है। विशेषकर भारतीय परिप्रेक्ष्य मे।

भारतीय जीवन का सतत प्रवाह जो धर्मानुप्राणित और दर्शन पोषित है, सस्कृति और उसकी सास्कृतिक क्रियाओ रूपी तरगो से तरगायित होकर मन मोहक बना हुआ है। जिस प्रकार भाव की अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से होती है ठीक उसी प्रकार धर्म, दर्शन तथा सस्कृति की अभिव्यक्ति जन जीवन के दैनिक क्रिया कलाप, तीज त्यौहार, उत्सव तथा पर्व आदि मे देखी जा सकती है। इनके माध्यम से सघर्षशील अशात और चिंता ग्रस्त जीवन मे, मानव कुछ क्षण के लिए आनन्दोन्मुख हो पाता है जो उसका परम लक्ष्य है। वर्तमान मे भौतिकवाद के प्रभाव स्वरूप जहा धर्म तथा दर्शन उपेक्षित होते जा रहे हैं, वहाँ इन सस्कारित त्यौहार और उत्सवो मे ही भारतीय सस्कृति को परित्राण मिल रहा है।

---

1 भारतीय दर्शनशास्त्र, पृष्ठ 31

2 हिन्दी साहित्यकोश, भाग प्रथम, पृष्ठ 868

त्यौहार, उत्सव और पव — सामान्यत इन तीनो को पर्याय अर्थ मे प्रयुक्त किया जाता है।[1] मनुष्य स्वभावत आनन्दप्रेमी है और वह जीवन तथा जगत के मध्य आनन्द प्राप्ति के अवसर की खोज मे रहता है। भारतीय मनीषा व्यक्तिगत माधना के साथ समष्टि की हितविधायक रही है। अत जीवन मे प्रत्येक अवसर पर ऋतु के अनुसार त्यौहारो तथा उनके मनाने की विधि भारतीय निजत्व का प्रभाव है। त्यौहार एक परिवारविशेष वगविशेष और स्थानविशेष मे अपने ढग से मनाया जाता है। महिलावग के व्रत आदि इसी कोटि मे आते है। उत्सव, मगलकाय, प्रमोद विधान, आनन्द विहार, यज्ञ, पूजा आदि के अथ मे इसका प्रचलन है।[2] त्यौहार की तुलना मे उत्सव का परिवेश अधिक व्यापक है। इसके मूल मे किसी महापुरुष अथवा घटनाविशेष का होना अपेक्षित है। इनके मानने की विधि भी अधिक समय, श्रम तथा व्ययसाध्य है और वैयक्तिक न होकर सामूहिक है। पर्व शब्द कोशकार इसका अथ त्यौहार और त्यौहार के पुण्य धम के रूप मे भी करते हैं।[3] वस्तुत पव, त्यौहार तथा उत्सव की तुलना मे अधिक व्यापक भावना का द्योतक है जिसमे समूचे देश अथवा जन भावना का धम आदि की सीमाओ से मुक्त रूप विकसित और व्यक्त होता है। प्राचीन परम्परा मे कुम्भ, अध-कुम्भ अथवा अध कुम्भी आदि तथा आधुनिक युगबोधानुसार 15 अगस्त तथा 26 जनवरी की गणना की जा सकती है।

मिश्रजी ने धम के स्थूल यथवा ब्राह्मणोनुमोदित रूप का समथन नही किया और न ही किसी अनुष्ठान आदि की चर्चा की है अपितु उसके जीवन्त तत्त्व जो हमारी पैतृक सम्पत्ति है, का विस्तृत विवेचन किया है। इस कोटि के निबन्धो मे 'श्री पचमी' 'होली' व्यासपूर्णिमा' तथा 'कुम्भ पव' आदि की गणना की जा सकती है। इनमे मिश्रजी की तत्त्वनिरूपिणी बुद्धि और जनकल्याण की भारतीय आत्मा के स्पष्ट दशन होते है। यथा श्रीपचमी' का पुराण सिद्ध इतिहास प्रस्तुत करते हुए वतमान युग के नामधारी विद्वानो पर मीठी चुटकी लेते हुए लिखते हैं, 'भारतवष मे अब कितने महा-पुरुष इस दिन की महिमा समझने वाले हैं? कितने पुरुष है जो यह समझते है कि तेज प्रताप का कारण शुष्क वीरता नही है, सरस्वती प्रदत्त बुद्धिमत्ता है पुराणो मे लक्ष्मी का वाहन उल्लू और सरस्वती का हस लिखा है। क्या इससे हमको यह शिक्षा नही मिलती कि लक्ष्मी के कृपापात्र प्राय 'घोघाबमन्त' होते है जिनको दिनमणि के प्रकाश मे सूझता तक नही और सरस्वती के दयापात्र वे महापुरुष है जिनमे 'दूध का दूध और पानी का पानी' करने की असाधारण सामथ्य विद्यमान है।[4]

---

1 भाषा शब्दकोश, स० डा० रमाशकर शुक्ल 'रसाल', पृष्ठ 751

2 वही, पृष्ठ, 262

3 भाषा शब्दकोष, स० डा० रमाशकर शुक्ल 'रसाल', पृष्ठ 974

4 माधव मिश्र निबन्धमाला, तृतीय खण्ड, पृष्ठ 4

'होली' के सम्बन्ध मे प्राचीन विचारो तथा ग्रन्थो का सदभ देते हुए मिश्रजी लिखते हैं—'होली का त्यौहार बहुत पुराना है, पुराणो की बातें जाने दीजिये—मीमासा दर्शन मे, होलिकाधिकरण इसी पव को लेकर चलता है । महर्षि जैमिनी जी ने यद्यपि अपने सूत्रो मे साक्षात रूप से होली का नाम नही लिया है, पर मीमासा के प्रति प्राचीन भाष्यकार माधवाचाय जैसे धुरन्धर विद्वान अपनी व्याख्या मे महर्षि का तात्पय वैसा ही प्रकाश करते है । जो हो, कट्टर से कट्टर नये विचार के पुरुषो को भी इतना स्वीकार तो अवश्य करना पडेगा कि उक्त आचार्यों के समय मे होली के त्यौहारो ने इतनी प्रतिष्ठा पा ली थी जिसके लिए 'मीमासादशन' जैसे उस श्रेणी के दशन मे एक अधिकरण बनना पडा । यहा यह बात भी स्पष्ट कर लेनी चाहिए कि आय जाति के शोचनीय अध पतन के साथ उनके त्यौहारो मे भी वैसा परिवतन हो गया जैसा उनकी जगत् विख्यात विद्या और स्वाधीनता मे ।'[1]

मिश्रजी धार्मिक परम्पराओ के अनन्य पोषक होते हुए भी रूढिवाद के कट्टर विरोधी थे । कुम्भपव के सदभ मे उनके विचार पठनीय है— भारतवष का दुर्भाग्य, ये लोक सवस्वापहारी मुसलमानो से न लडकर परस्पर ही लडते रहे, नही तो वीर सन्यासियो के द्वारा देश सवथा सुरक्षित रहता और ये वतमान समय मे लोगो के चक्षु-शूल न होते । जो हो, सन् 1760 ई० मे स्नान के पिछले दिन तारीख 10वी अप्रैल को सन्यासियो और वैरागियो मे लडाई हुई जिसमे अनुमान 1800 आदमी मारे गये । इसवी सन् 1795 मे अपनी उन्नति के समय यहाँ सिक्खो ने 500 सन्यासियो को काट डाला ।'[2]

भारत की इस सास्कृतिक भावना तथा सास्कृतिक स्वतन्त्रता की विदेशी विद्वानो ने भी प्रशसा की है । हमारे ये त्यौहार, उत्सव और पव केवल हँसी तथा मनोविनोद का ही आधार नही है अपितु उनके मूल मे सस्कृति और स्वास्थ्य रक्षा का भाव भी निहित है । मिश्रजी के शब्दो मे — 'हिन्दुओ के जातीय उत्सव व त्यौहार खाली हँसी दिल्लगी करने के लिए नही बनाए गए है वरच उनमे ऐसे विशेष नियम भी रखे हैं जिनसे स्वास्थ्य की रक्षा, जातीय भाव की उन्नति और धम मे प्रवृत्ति भी बराबर होती रहे ।'[3] आज इन त्यौहार और उत्सवो मे विकृति आ चुकी है किन्तु इनके प्रवर्तको के विचार सुन्दर, पावन और जीवन दशन से अनुप्राणित थे । मुस्लिम त्यौहारो से तुलना करते हुए मिश्रजी लिखते हैं— 'किसी समय हिन्दुओ का जीवन आनन्दमय था । इनके बारहो महीने आनन्द से गुजरते थे । आठ पहर चोसठ घडी आनन्द से कटती थी । चैत्र से फागुन तक बराबर उत्सव हुआ करते । चौबीस अवतारो की जन्म तिथियो पर ऐसा उत्सव होता की देखने वाले वर्ष दिन तक याद किया करते । ऐसा मनहूस महीना

1 माधव मिश्र निबन्धमाला, तृतीय खण्ड, पृष्ठ 7

2 वही पृष्ठ 33

3 वही पृष्ठ 35

एक भी न था जिसमे किसी न किसी प्रकार का उत्सव व त्यौहार न होता हो। तात्पय यह कि पूवजो ने शोक दु ख को कभी कुछ समझा नही समझा केवल आनन्द को, क्योकि वे जानते थे कि शोक और दु ख मे फँसना अज्ञानिया का काम है । आत्मा आ।न्द स्वरूप और अजर अमर है। इतिहास वेत्ता इस बात को अच्छी तरह जानत है कि 'मुहरम' के समय 'करबला' के मैदान मे मुसलमानो के यहाँ जो कुछ शाचनीय व्यापार हो चुका है उससे कही बढकर हिन्दुओ के यहा 'प्रभास' तथा कुरुक्षेत्र' मे घटना घट चुकी है। ० ० ० कहिए यह घटना करबला से किस बात मे कम थी ? विचार कर देखा जाए तो 'प्रभास और कुरुक्षेत्र' हर अश मे बढा चढा है। फिर क्या कारण है कि मुसलमानो की तरह उस शोक-सयुक्त घटना की हमारे यहा यादगार नही। इसका कारण वही है जो हम ऊपर लिख चुके है कि शोक और दु ख मे फँसना अज्ञानियो का काम है।'[1]

राजनीतिमूलक निबन्ध

पडित माधव प्रसाद मिश्र के जीवनवृत्तावलोकन से स्पष्ट है कि उनकी साहित्य-साधना मे सामयिक राजनीति का प्रत्यक्ष प्रभाव लक्षित होता है। राजनीतिक व्यक्तित्व को दो रूपो मे देखा तथा आका जा सकता है। — एक, सक्रिय राजनीति तथा दूसरा राजनीतिक विचारधारा के समथक रूप मे। मिश्रजी दूसरी श्रेणी मे आते है। सामान्यत सामान्य मानव भी समसामयिक राजनीति के प्रभाव से अछूना नही रहता है। तब एक सजग साहित्यकार तथा पत्रकार का उसस अप्रभावित होना अथवा पृथक रहना कैसे सभव है ? अत उनकी अनेक रचनाओ मे युगीन राजनीति का सकेत मिलता है । राजनीति को विषय बनाकर मिश्रजी ने गिने चुने निबन्ध लिखे है — राजा की उत्तमता, बुराई मे भलाई, स्वदेशी आन्दोलन, विद्यार्थी और राजनीति तथा खुली चिट्ठी।

इन निबन्धो की विवेचना करने से पूर्व राजनीतिक निबन्ध के स्वरूप तथा मिश्रजी की समसामयिक राजनीति पर दृष्टिपात करना असमीचीन न होगा। राजनीति स्वत सावभौमिक होते हुए भी शाश्वत नही है। वह व्यक्ति और समय सापेक्ष होती है । भारतीय राजनीति के इतिहास के यह शब्द साहित्य की अनेक विधाओ के समान अधिक प्राचीन नही है। अधिक प्राचीन होने से हमारा अभिप्राय उसके आधुनिक रूप, प्रयोग और विस्तार से है। आज यह विषय राजप्रसाद की स्वण सीमा से मुक्त हो सवसामान्य की जिह्वा तक पहुँच गया है। पुरातन काल मे जब राजतत्र थे, राजनीति तब भी थी किन्तु उस समय वह राजा, कुलगुरु तथा समाज के प्रतिष्ठित और विचारशील लोगो तक ही सीमित थो सवसामान्य का उसमे दखल नही था। जहाँ तक राजा, राज्य, राजनीति, शासन, शासनतत्र तथा 'राजनीति दर्शन अथवा शासन दशन का प्रश्न है, भारतीय मनीषा मे इसके मूलतत्व 'स्वातत्र्य-भावना' के दशन, भारतीय नीतिशास्त्र

1 माधव मिश्र निबन्धमाला, परिशिष्ट खण्ड, पृष्ठ 1

की विश्व प्रसिद्ध रचना 'मनुस्मृति' मे होते है जिसमे 'परवशता' को सभी दुखो का मूल कारण माना गया है। दशनशास्त्र मे आत्मस्वरूप को पहिचानने के साथ उसकी मुक्ति के स्वरूप और साधनो पर महर्षि कपिल, कणाद, गौतम तथा व्यास आदि के साथ श्रुति तथा श्रीगीता जी के उद्धरणो द्वारा मिश्र जी ने इस स्वातत्र्य भावना की प्राचीनता का प्रतिपादन करते हुए लिखा है, 'जो लोग भारतवष की आय जाति को पराधीन बतलाते हैं, वे या तो भ्रान्त हैं या किसी कारणवश जानबूझ कर झूठ बोल रहे हैं। अन्यथा यह कब सभव है कि दशनशास्त्र की आदि भूमि होकर भारतवष स्वतत्रता के सुख से अपरिचित रहे और उसको प्राप्त करने के लिये कुछ भी यत्न न करे।'[1]

शताब्दियो की परतत्रता के पश्चात् 1885 मे इस नयी चेतना का उदय हुआ और कुछ समय उपरात ही काग्रेस मे अन्तर्विरोध प्रकट होने लगा था। एक ओर विपिन चन्द्र पाल जैसे उग्रवादी नेता थे तो दूसरी ओर श्री सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, श्री गोखले तथा पडित मदनमोहन मालवीय जी जैसे सुधारवादी। इनके अतिरिक्त श्री लोकमान्य तिलक विशुद्ध भारतीय राष्ट्र भावना के पोषक थे उन्होने 'पच स्व' द्वारा राष्ट्रीय भावना को अनुप्राणित कर गति दी। मिश्रजी तिलक जी के विचारो के पोषक थे। वे मालवीय जी से सहमत नही थे।

साहित्य के अन्तगत उस गद्य-रचना को राजनीतिक निबन्ध की सज्ञा दी जा सकती है जिसमे लेखक युगीन राजनीति का तटस्थ अवलोकन कर देश तथा जातीय भावना को अपने परिवेश के अनुरूप निजत्व के साथ अपनी परम्पराओ, दशन, धम और सास्कृतिक मूल्यो की रक्षा करते हुए जागृत कर आन्दोलित भी करता है।

मिश्रजी कृत राजनीतिमूलक निबन्धो मे 'राजा की उत्तमता', 'बुराई मे भलाई', तथा 'स्वदेशी आन्दोलन' लघु निबन्ध रचनाएँ हैं तथा 'विद्यार्थी और राजनीति' एवम् 'खुली चिट्ठी' निबन्ध अपने समय मे बहुचर्चित रहे है। ये निबन्ध मिश्रजी की राजनीतिक विचारधारा के विस्तृत तथा विवेचनात्मक निबन्ध है। 'खुली चिट्ठी' निबन्ध मिश्रजी के देहावसानोपरान्त प्रकाशित हुआ। 'विद्यार्थी और राजनीति' उन्होने अपने अतिम दिनो मे लिखा था। 'राजा की उत्तमता' मे भारतीय परम्परा एव जनभावना का विवेचन करते हुए राजा के गुणो तथा कत्तव्यो की चर्चा की गई है। स्वधम और जातीय गौरव की रक्षा को राजा का परम कर्त्तव्य माना है और इन्ही गुणो को दृष्टि में रखते हुए मुस्लिम नवाबो की प्रशसा की है। 'बुराई मे भलाई' मे लाड कजन द्वारा बग-भग की नीति की प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न एकता की भावना का प्रतिपादन है। 'स्वदेशी आन्दोलन' मे बगालियो के साथ मारवाडी समाज की स्वार्थी मनोवृत्ति का विवेचन विश्लेषण है। उन्ही के शब्दो मे— 'कलकत्ते मे मारवाडी अग्रेज़ी व्यापार द्वारा बढे है और उनके लिए उसका द्वार खुशामद और परिश्रम से खुला है। वे भली भाँति जानते है कि यदि

1 माधव मिश्र निबन्धमाला, राजनीति खण्ड, पृष्ठ 14

अग्रेजो की दलाली उन्होने छोडी तो युवतप्रदेश के लोग उसे उसी समय ग्रहण कर लेगे। पिछले दिनो जो मारवाडियो ने विलायती माल नही मगवाया था, उसमे उनका निज का स्वाथ था। - स्वदेश हितैषी बगालियो का स्वार्थी मारवाडी अनुसरण नही कर सके, यह सत्य है किन्तु बगालियो के काय को वे गौरव की दृष्टि से देखने लगे हैं। उनकी कोठियो पर बगालियो की चर्चा रहती है।'[1]

'विद्यार्थी और राजनीति' आज भी एक ज्वलन्त विवादास्पद विषय है। स्वतत्रता प्राप्ति के इतिहास मे विद्यार्थी वग ने बढ चढकर भाग लिया। राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी इस मत के पोषक तथा प्रबल समथक थे। विद्यार्थी किसी भी देश, जाति तथा राष्ट्र का मेरुदण्ड हैं। अत उनका सक्रिय राजनीति के प्रति जागरूक तथा क्रियाशील रहना आज भी वाछनीय है। ये तथ्य मिश्रजी द्वारा गाधीजी से भी पहले स्वीकृत तथा प्रति पादित किये जा चुके थे। यथा — मिश्रजी के शब्दो मे, 'भारतवष के विद्यार्थियो के सामने पराधीनता का इतिहास आता है और उनकी सुखमयी स्वतत्रता का पुरावृत्त उनसे दूर रहता है, जिससे उनकी मानसिक स्वाधीनता का विकास नही होता।'[2]

'खुली चिट्ठी' मिश्रजी की बहुचर्चित रचना है। इसमे पडित मदनमोहन मालवीय जी के कृत्यो की यथाथ समीक्षा है, उनके प्रारभिक कार्यों की प्रशसा करते हुए, विद्यार्थी और राजनीति के विषय को लेकर मालवीय जी के कृत्यो तथा विचारो की शल्य चिकित्सा की गई है। अतिम परिच्छेद मे मालवीय जी के विचार परिवतन की युधिष्ठिर ययाति, धृष्टद्युम्न, अश्वत्थामा तथा श्री रामचन्द्र आदि के प्रारब्ध या नियतिवश किए गए कतिपय भूलयुक्त कर्मो से तुलना करते हुए कामना करते हैं कि 'क्या ही अच्छा हो यदि अब भी अपने लिए न सही, देश के लिए ही चेत जाएँ और गिरे हुए युक्त-प्रदेश मे फूट का प्रचार न होने दें।'[3]

जीवनीमूलक निबन्ध

सामान्यत साहित्य की प्रत्येक विधा चाहे वह ज्ञान साहित्य की हो और चाहे शक्ति साहित्य की, मानव जीवन का ही निरूपण करती है। जीवनी शक्ति-साहित्य की एक महत्त्वपूण और अत्यन्त रोचक विधा है। जीवनी से अभिप्राय उस विशिष्ट रचना स है जिसमे लेखक अपनी अथवा किसी सामान्य और विशेष व्यक्ति के जीवन की वास्तविक घटनाओ के आधार पर अपने या उसके जीवनवत्त के सत्य की रक्षा करते हुए शिवम् की प्रेरणा से प्रेरित हो कर सुन्दर शैली मे प्रतिपादित करता है।

साहित्य और जीवन का परस्पर बिम्ब प्रतिबिम्ब भाव सम्बन्ध है। साहित्य समाज-सापेक्ष माना जाता है और व्यक्ति समाज की लघु इकाई है अत उसके जीवनवृत्त का

1 माधव मिश्र निबन्धमाला, राजनीति खण्ड, पृष्ठ 12

2 माधव मिश्र निबन्धमाला, राजनीति खण्ड, पृष्ठ15 16

3 वही पृष्ठ 35

चित्रण सिद्धान्तत एक विधा सिद्ध हो जाता है। जीवन स्वत मे कुछ नही है। वह कतिपय घटनाओ और उनकी क्रिया प्रक्रिया की चेष्टा तथा अभिव्यक्ति की गतिशीलता ही है। समान दीखने हुए भी प्रत्येक व्यक्ति अपना अस्तित्व और पृथक् व्यक्तित्व रखता है। वह अपने व्यक्तिगत मानवीय गुणो के कारण समाज मे अपना स्थान रखता है। उस व्यक्तित्व का अध्ययन अत्यन्त रोचक एव आकर्षित करने वाला होता है। पाठक उसके जीवन की गूढ एव गुह्य समस्याओ से परिचित हो जाता है जो उसे अन्य व्यक्तियो के जीवन से पृथक् रखती हैं। इस जीवनीपरक साहित्य मे हमे उन व्यक्तियो के व्यक्तित्व का परिचय मिलता है जो साधारण होते हुए भी साधारण नही है, एव जो अपने व्यक्तित्व की विशेषताओ के कारण असाधारण बन पडे हैं।'[1]

वस्तुलेखन की दृष्टि से 'जीवनी' इतिहास का लघु रूप कहा जा सकता है। प्रतिपाद्य मे व्यक्ति और समष्टि के अन्तर के साथ, जहा इतिहासकार घटनाओ का विवरण दे कर उनका विश्लेषण करता है, वहाँ जीवनी लेखक घटनाओ के विवरण के माध्यम से चरितनायक के जीवन-वृत्त को रोचक तथा प्रभावशाली भी बनाता है। वह घटना सत्य की रक्षा करते हुए चरितनायक के व्यक्तित्व की पुन सृष्टि भी करता है और यही जीवनी इतिहास की परिधि से निकल कथा साहित्य की सीमा मे प्रविष्ट हो जाती है। रोचकता तथा प्रभावशालिता के लिए जीवनी लेखक कल्पना का आश्रय भी लेता है किन्तु उसी सीमा तक जहाँ तक सत्य और घटना विकृत न हो और यही सीमा जीवनी को कथा साहित्य से पथक् रखती है। कथा साहित्य के नायक नायिका का व्यक्तित्व निर्माण प्राय काल्पनिक घटना आधृत होता है जबकि जीवनी मे सत्य घटनाओ के प्रतिपादन मे केवल कलात्मक कल्पना का पुट भरा रहता है।'[2]

इतिहासकार और आख्यानात्मक निबन्धकार का अन्तर स्पष्ट करते हुए प्रो० ब्रह्मदत्त शर्मा ने लिखा है, 'दोनो मे कार्यक्षेत्र और रचना पद्धति का अन्तर है। इतिहास कार घटनाओ का ब्यौरा तटस्थ हो कर देता है। वह अपने व्यक्तित्व को घटनाओ से पूर्ण रूपेण ऊपर उठाए रखता है जबकि आख्यानात्मक निबन्ध मे कल्पना तथा भाव की प्रधानता तथा विचार की गौणता रहती है। इतिहासकार की दृष्टि बाह्य की अभिव्यक्ति की ओर और आख्यानात्मक निबन्धकार की दृष्टि अन्तर अभिव्यक्ति की ओर होती है।'[3] इतिहास मे देश प्रमुख और अगी विषय होता है जबकि जीवनी मे व्यक्ति। जीवनी और इतिहास मे एक अन्य अन्तर है रसवत्ता का। जीवनी शक्ति साहित्य की विधा है और इतिहास ज्ञान साहित्य की। इतिहास की तुलना मे जीवनी के अ तगर्त 'सत्य' की रक्षा के साथ साथ 'शिवम्' की प्रेरणा और 'सुन्दरम्' की आराधना भी होती है।

---

1 आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य, डा० शान्ति खन्ना, पृष्ठ 17

2 जीवनी सकलन, भूमिका भाग, डा० जयचद राय, पृष्ठ 9

3 हिन्दी साहित्य मे निबन्ध, पृष्ठ 16

अभिप्राय यह है कि जीवनी मे कलात्मक तत्त्व इतिहास की अपेक्षा कही अधिक होता है। इतिहास कटु सत्य तथा नीरस तथ्य पर अधिक ध्यान देता है, प्रभाव पर नही ।

जीवनी तथा अन्य साहित्य विधाएँ

इतिहास के अतिरिक्त जीवनी आत्मकथा, सस्मरण, डायरी तथा अधुना रूप इन्टरव्यू के अधिक निकट होते हुए भी पृथक् है। यथा आत्मकथा का लेखक अपने जीवन से सम्बद्ध वणन लिखता है। आत्मकथा द्वारा लेखक अपने बीते हुए जीवन का सिंहावलोकन और एक व्यापक पृष्ठभूमि मे अपने जीवन का महत्व दिखाना चाहता है।[1] आत्मकथा जीवनी की या उसके किसी भाग की वास्तविक घटनाओ को जिस समय वे घटित हुइ उन समस्त चेष्टाओ को पुनगठित करती है। उसका मुख्य सम्बन्ध आत्म विवेचन से होता है, बाह्य विश्व से नही।[2] दोनो के सृजन के मूल मे उद्देश्य की पूणता प्राप्त करना और प्रेरणा देना है कि तु व्यावहारिक दष्टि से लेखक को जहा जीवनी लिखते समय प्रतिपाद्य के प्रति आलोचकीय दृष्टि के सन्तुलन की आवश्यकता है कि कही वह भावावेश मे न तो गुणो की प्रशसा मे सप्तरगी, इन्द्रधनुषी ससार मे यथाथ से दूर जा पहुँचे और न ही किसी पूर्वाग्रह के आधार पर गुण छोड दोष गिनाने लग जाए। आत्मकथा लिखते हुए ठीक इसके विपरीत जागरूकता की अपेक्षा है कि न तो लेखक अपने मुँह मिया मिट्ठू बने और न ही दोषो तथा असफलताओ की ओर से आखें मूद ले।[3] दोनो विधाओ मे लेखक का सहानुभूतिपरक तथा तटस्थ दृष्टिकोण आवश्यक है। शैली तत्त्व दोनो मे महत्त्वपूण है। प्रभावोत्पादक तथा गभीर चरित्र उद्घाटन की सशक्त शैली के अभाव मे दोनो विधाएँ विवरण मात्र बन कर रह जाएँगी। जीवनी जहाँ अन्य पुरुष मे लिखी जाती है, वहा आत्मकथा उत्तमपुरुष मे।

सस्मरण और जीवनी

'स्मृति के आधार पर किसी विषय या व्यक्ति के विषय मे लिखित लेख या ग्रथ को सस्मरण कहते है।[4] सस्मरण जीवनी साहित्य के अन्तगत ही आते हैं। ये विवरण तथा घटनात्मक होते हैं किन्तु ये घटनाएँ सत्य होने के साथ ही चरित्र की परिचायक भी होती है। किसी व्यक्ति के जीवन मे सहसा या विशेष अवसरो पर घटने वाली घटनाओ का लिपिबद्ध रूप सस्मरण साहित्य बन जाता है।[5] मानव जीवन ही नही सपूण विश्व की सत्ता ही घटनामूलक है। जीवनी साहित्य मे व्यक्ति के जीवन की अनेक घटनाओ का वणन होता है। जबकि सस्मरण मे सभी की अपेक्षा नही है। सस्मरण के

1 हिन्दी साहित्यकोश, भाग 1, पृष्ठ 98
2 आधुनिक हिन्दी का जीवनीपरक साहित्य, पृष्ठ 37-38
3 काव्य के रूप, डा० गुलाबराय, पृष्ठ 332
4 हिन्दी साहित्यकोश, भाग 1, पष्ठ 870
5 हिन्दी गद्य विकास और साहित्य, डा० ओमप्रकाश शर्मा, पृष्ठ 163

अन्तगत व्यक्ति ही नही जड पदाथ, स्थान विशेप उत्थान पतन की स्थिति का स्मृति परक, विनादात्मक अथवा रोमाचक वणन भी हो सकता है। यथा — डा० गुलाबराय का 'नर से नारायण' लेख। जीवनी मे रचनात्मक गुण का समावेश परमावश्यक है। उसमे प्रवधात्मकता का निर्वाह लेखक का दायित्व है। इसके अभाव मे जीवनी सस्मरणो का सकलन मात्र बन जाती है।

रेखाचित्र और जीवनी

रेखा चित्रकार का दायित्व चरित्र का उद्घाटन करना है विश्लेषण करना नही। रेखाचित्र लेखक को सीमित क्षेत्र मे समस्त चित्र चित्रित करना होता है। रेखाचित्र किसी व्यक्ति, घटना या भाव का कम से कम शब्दो मे ममस्पर्शी, भावपूण एव सजीव अकन है।[1] वस्तुत यह शब्द चित्रकला का है और अग्रेजी भाषा के शब्द 'स्केच' का पर्याय है। चित्रकला के अन्तगत्त पूण ब्यौरेवार चित्र बनाकर आकृति की झाकी मात्र देना रहता है। विषय की सक्षिप्तता और प्रतिपादन की सजीवता के माध्यम से ही लेखक 'रेखाचित्र' शब्द को साथक कर सकता है। जबकि जीवनी व्यक्ति के अन्तर्बाह्य का पूण प्रभावशाली प्रेरक तथा हृदयस्पर्शी विधा है। रेखा चित्रकार कभी-कभी व्यग्य और मनोविनोद को ही प्रमुखता देता है जबकि जीवनी मे इसके लिए अधिक स्थान नही है क्योकि इमसे जीवनी निंदामूलक रचना बन जाती है।

डायरी और जीवनी

यह अत्याधुनिक विधा भी जीवनी-साहित्य का अग है। आत्मकथा की तुलना मे अधिक विश्वसनीय होती है क्योकि घटना क घटित होने के समय ही लिखी जाती है। दैनिक व्यापारो एव घटनाओ के ब्यौरेवार वणन को डायरी कहते है। यह लेखक के सवथा निजी अनुभवो और विचारो से सबधित होती है। इसमे वह अपने विविध क्रिया-कलापो के साथ सुखद तथा दुखद अनुभव और अन्य व्यक्तियो के विषय मे अपना अभिमत लिखता है। स्पष्ट कथन, आत्मीयता और सहज अभिव्यक्ति की दृष्टि स डायरी का अपना ही महत्त्व है किन्तु जीवनी की तुलना मे सीमित और एकाकी।

इण्टरव्यू (साक्षात्कार) और जीवनी

जीवनीमूलक साहित्य मे एक और विधा 'इण्टरव्यू' (साक्षात्कार) का पत्रकारिता के साथ साथ विकास हो चला है। जब लेखक व्यक्तिविशेष के विचारो के माध्यम से उसके चरित्र चित्रण करने के निमित्त उस व्यक्ति से साक्षात्कार करता है तथा पारस्परिक वार्तालाप द्वारा प्रश्नोत्तर रूप मे विचार विनिमय करता है और इस भेंटवार्ता के आधार पर उस व्यक्ति की चारित्रिक विशेषताओ को यथासाध्य यथाथरूप मे लिपि बद्ध करता है। उस विधा को भेंटवाता साक्षात्कार या इण्टरव्यू कहते है। इसके माध्यम से भेंटकर्त्ता न केवल साक्ष्य के विचारो तथा भावो का प्रकाशन करता है

1 हिन्दी साहित्य कोश, भाग 1, पृष्ठ 731

अपितु जन सामान्य की ज्ञानवृद्धि भी । एक दृष्टि से इस विधा का क्षेत्र पर्याप्त व्यापक है, उसमे प्रत्येक क्षेत्र का व्यक्ति सामान्य से लेकर विशेष तक, श्रमिक से लेकर राज नेता तक आ जाते है किन्तु जीवनी प्राणवत्ता और रसवत्ता इसमे नही के बराबर होती है ।

अन्त मे निष्कषत कह सकते है कि आत्मकथा, सस्मरण डायरी, रेखाचित्र तथा साक्षात्कार आदि विधाएँ जीवनीमूलक साहित्य का अग होते हुए भी जीवनी की तुलना मे पूण और प्रभावोत्पादक तथा प्रेरक नही है । आत्मकथा मे आत्मप्रचार की प्रवृत्ति रेखाचित्र मे विश्लेषण का अभाव सस्मरण, तथा डायरी आदि की सीमित सीमा आदि के साथ जीवनी शिल्प और शैली की दृष्टि से अपना पृथक् अस्तित्व रखती है । वस्तुत जीवनी लेखन स्वत मे पूण तथा विशिष्ट विधा है ।

जीवनीमूलक साहित्य के मूलतत्व

प्राय इस विधा के विवेचको ने मूल प्रेरक तत्त्व के रूप मे प्रतिपाद्य के व्यक्तित्व तथा आकृति प्रकृति के साथ उसके आचार विचार से लेखक का प्रभावित होना माना है । जिस प्रकार किसी भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए हमे उसके शब्दो का अध्ययन करना आवश्यक है, इसी प्रकार किसी व्यक्ति के जीवन को समझने के लिए हमे सवप्रथम उसके शारीरिक अवयवो की विशिष्टता को देखना पडता है ।'[1] प्रभावक अथवा श्रद्धेय व्यक्ति के शारीरिक गठन, व्यक्तित्व और वातावण आदि प्रेरक तत्त्वो से प्रेरित होकर, जीवनी लेखक लेखनी उठाता है । इस प्रतिपाद्य के मूल मे जिस प्रकार प्रभावक व्यक्ति का व्यक्तित्व सामान्य होते हुए भी किसी दिशाविशेष मे असामान्य होता है ठीक उसी प्रकार लेखक का अपना निजी दृष्टिकोण भी रहता है । उदाहरणाथ आज पाठयक्रमो के लिए विभिन्न स्तरो पर जीवनी साहित्य लिखा जा रहा है । जिसमे सृजनात्मक प्रतिभा का प्रयोग न के बराबर होता है । इसी प्रकार पत्र पत्रिकाओ मे कतिपय नामधारी दानवीरो की जीवनियाँ लिखी और प्रकाशित की जाती हैं। लेकिन जो लखक वैयक्तिक राग द्वेष, लोभ लालच या स्वाथ से तटस्थ रहकर, जब किसी महापुरुष का जीवन वृत्त लिखता है जो कालविशेष की परिधि मे न सिमिट कर अपने विशिष्ट गुणो और चारित्रिक विशेषताओ के आधार पर शाश्वत प्रकाश स्तम्भ का काय करता है । वस्तुत वही सच्चा जीवन वृत्त है और ऐसे ही जीवनीलेखक की लेखनी सफल है ।

अध्ययन और सुविधा की दृष्टि से विद्वानो ने जीवनी साहित्य के तत्त्वो के रूप मे घटना चरित्र चित्रण, वातावरण, भाषा शैली और उद्देश्य को प्रमुखता दी है । डा० शान्ति खन्ना के मतानुसार शारीरिक गठन, व्यक्तित्व जिसके अन्तर्गत गुण दोष विवेचन, व्यक्तित्व का पूणज्ञान, वातावरण — राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा साहित्यिक परिस्थिति तथा आचरण — जिसके माध्यम से चरित्रनायक के क्रिया-कलापो

1 आ० हि० का जीवनीपरक साहित्य, डा० शान्ति खन्ना, पृष्ठ 20

की विवेचना हो सके ।[1] अन्तत जीवनी के इन मूल गुणो के अतिरिक्त, वश तथा परिवार परिचय क्योकि डा० खन्ना ने जिस शारीरिक गठन को प्राथमिकता दी है, वह वशगत है । व्यक्तित्व का बहिरग भी, वशाधारित है जिसके अन्तगत पितृवश के साथ मातृवश का भी महत्त्वपूण योग रहता है । अन्तरग व्यक्तित्व के निर्माण मे परिवार और पारिवारिक परिवेश ही सस्कार डालने मे अधिक सबल होता है । बाल्यकालीन सस्कार, अवसर अर्थात् वातावरण पा कर विकसित होते हैं । इसके पश्चात् जीवन चरित्र नायक के कार्यों का विवेचन होना चाहिये, जिससे उसका अपने युग की चेतना के प्रति दष्टिकोण स्पष्ट हो सके । उसके जीवन के वे तत्त्व अधिकाधिक उभरने चाहिएँ जो भावी समाज या सतति को प्रेरणा देने मे समर्थ हो ।

उपयु क्त विवेचन के आधार पर पडित माधव प्रसाद मिश्र के जीवनीमूलक निबधो अथवा जीवनी साहित्य का पयवेक्षण करने से पूव उनकी तालिका का परिचय असमीचीन न होगा । माधव मिश्र निबन्धमाला के प्रथम खण्ड मे जीवनचरित्र शीषक से 22 निबन्ध सकलित हैं जिनकी तालिका निम्न प्रकार है —

(1) विशुद्धानन्द चरितावली — आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी जीवनी साहित्य की प्रारम्भिक तीन जीवनियो मे इसे प्राथमिकता दी है ।[2]

(2) महात्मा तैलिग स्वामी । 'सुदर्शन', 1/4
(3) श्री रगाचाय । 'सुदर्शन', 1/9
(4) दरभगे के महाराज । 'सुदशन', 1/10
(5) व्यास जी का बैकुण्ठवास । 'सुदशन' 1/11
(6) राजा सेठ लक्ष्मणदास । 'सुदर्शन' 2/11
(7) राज राजेश्वरी । 'सुदशन' 2/1
(8) पडित नन्दकिशोर जी । 'सुदर्शन' 2/3
(9) भास्करानन्द सरस्वती । 'सुदशन' 2/5 परमपद शीषक से
(10) कैलाशवासी दरभगानरेश । 'सुदशन' 2/9, 10, 11
(11) लाला श्री निवासदास । 'सुदर्शन' 2/6, 7, 8
(12) परहस रामकृष्णदेव । 'सुदशन' 3/1
(13) पडित रामचन्द वेदान्ती । 'सुदशन' 3/3
(14) स्वामी और सपादक, तथा

1 आ० हि० का जीवनीपरक साहित्य, डा० शान्ति खन्ना, पृष्ठ 21 22
2 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 470

(15) प्रभु परलोकवास (पडित प्रभुदयाल पाण्डे)। 'सुदशन' 3/2
(16) बाबू मोतीलाल बाघला — 'वैश्योपकारक' 1/3
(17) सेठ गुरुसहायमल — 'वैश्योपकारक' 1/4
(18) बाबू गोपालचन्द जी — 'वैश्योपकारक' 1/7
(19) रत्नहानि (काशी निवासी माता प्रसाद)। 'वैश्योपकारक 1/11
(20) रायबहादुर सेठ सूय मल जी। 'वैश्योपकारक' 1/12
(21) सेठ रामदयालु नेवटिया। 'वैश्योपकारक' 2/3
(22) लालानन्द रामजी। 'वैश्योपकारक' 2/4

मिश्रजी धार्मिक वृत्ति के समाज सुधारक थे अत उन्होने विवेच्य निब धो मे मूलत धार्मिक व्यक्तियो को ही अधिक महत्त्व दिया है। धम, त्यागी तथा सयमी महात्माओ के चरित्र पर ही आधारित होता है। ऐसे ही दिव्य चरित्र भावी सतति को प्रेरणा और शक्ति प्रदान करते हैं। 'विशुद्धचरित्रावली' मे एक सती होती हुई पतिव्रता का अपने बारह वर्षीय पुत्र को निम्न सन्देश भारतीय धार्मिक भावना और विश्वास का प्रत्यक्ष प्रमाण है— 'बेटा तुम अकेले नही हो—धम तुम्हारे साथ है, जिसके लिए तुम्हारे पिता ने युद्ध मे जीवनदान किया और मैं अग्नि मे कर रही हूँ, वही धम तुम्हारी रक्षा करेगा।'[1]

प्रत्येक साहित्यकार की रचना मे युगबोध एक अपेक्षित गुण है। परिस्थितिवश हमारा परम्परागत आदश चरित्र धम और दशन के तत्त्व ज्ञानाभाव मे पतनोन्मुख हाता जा रहा है। स्वामी जी के शब्दो मे मिश्रजी ने इस विषय पर अपना दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए लिखा—'पुराण प्रसिद्ध मनु, याज्ञवल्क्य और वशिष्ठ आदि महर्षियो के वदनीय चरित से इस समय हम उतना लाभ नही उठा सकते, जितना स्वामी विद्यारण्य प्रणीत 'शकरचरित' से। यह उनके चरित की त्रुटि नही है, देश, काल और पात्र का प्रभाव है।'[2] प्रस्तुत कथन मिश्रजी के युगबोध का परिचायक है। शाश्वत धम के अतिरिक्त प्रत्येक युग का अपना धम होता है जिसे सामान्यजन सुगमता से हृदयगम कर लेता है जैसे वतमान मे भौतिकवादी पदार्थी-धम।

अभिप्राय यह है कि मिश्रजी के जीवनी लेखन मे प्रारम्भिक अवस्था के होत हुए भी वे सभी तत्त्व पूणरूपेण विद्यमान हैं जिनकी स्थापना गत कुछ दशको मे हुई है। उनके इन निब धो का कथ्य लोकोपकारी, प्रेरक तथा सद्गुणाधार व्यक्ति हैं। इन गुणों के मूलाधार लोक कल्याण की प्रेरणा की क्षमता, धमभाव, दानशीलता, सत्य प्रियता, निष्पक्षता कायपटुता, परदु खकातरता, दीन सेवा, विद्वत्ता तथा साहित्य-साधना

1 विशुद्ध चरितावली, पृष्ठ, 24
2 विशुद्ध चरितावली, पृष्ठ 1

है जो कालजयी हैं और इन्हे अपनाकर व्यक्ति भी कालजयी हो सकता है। पाश्चात्य विचारको की दृष्टि मे साहित्यान्तगत 'सजैस्टिवनैस' एक महत्वपूण अपेक्षित गुण है और मिश्रजी के इन जीवनीमूलक निबन्धो के आधार चरित्रो मे ये गुण पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान हैं। इन निबन्धो मे मिश्रजी ने प्रशस्ति और विवरणमूलक शैली नही अपनायी है अपितु विषयानुरूप समाज और व्यक्ति पर व्यजना के पुट से सहज साहित्यिक व्यग्य भी किया है किन्तु उह व्यग्य मे किसी का मन दुखाना उनका लक्ष्य नही है।

जीवनीमूलक साहित्य लेखक मे कवि जैमी सहानुभूतिपूण भावसष्टि तथा यथातथ्य निरूपिणी आलोचक की तटस्थ दृष्टि का होना आवश्यक है। एक अच्छी जीवनी मे व्यक्ति के जीवनक्रम और घटनाक्रम के साथ सामाजिक स्थिति का रोचक तथा प्रभाव पूण चित्रण भी परम अपेक्षित है। हिन्दी साहित्य की जीवनी विधा को मिश्रजी का सस्पश बहुत अल्पावधि के लिए मिला किन्तु मिश्रजी ने उसमें ही उसे जो शक्ति, कौशल और व्यापकता प्रदान की वह स्वत मे एक उपलब्धि है।

साहित्यविषयक निबन्ध

यद्यपि साहित्यविषयक उपशीषक अटपटा लगता है। साहित्य तो सभी को आत्म-सात् कर चलता है तथापि यहा विषयानुरूप ऐसी धृष्टता अपेक्षित थी। साहित्यविषयक से आशय शुद्ध साहित्यागो से है। इस दृष्टि से (1) काव्यालोचना, (2) उपन्यास और आलोचक तथा भाषा और लिपि सम्बन्धी निबन्ध विवेच्य हैं।

'काव्यालोचना' तथा 'उपन्यास और आलोचक' आलोचनाविपयक निबन्ध है। इसमे सैद्धान्तिक और व्यावहारिक दोनो प्रकार की आलोचना के दशन होते है। आलोचना का तात्पय स्पष्ट करते हुए मिश्रजी ने लिखा है, 'ससार मे जो कुछ सुन्दर और सर्वोत्कृष्ट, ज्ञात और चिंतित है, उसकी शिक्षा का सुविस्तार और समृद्धि करना ही समालोचना का तात्पय है।'[1] आलोचना सम्बन्धी मिश्रजी का उक्त मत अपने व्यापकत्व के कारण विचारणीय है। यह मत साहित्य ही नही, साहित्येतर जीवन जगत् के सभी क्षेत्रो मे अनुकरणीय है। इसमे 'सुन्दर', 'सर्वोत्कृष्ट' और 'शिक्षा' शब्द विशेष है। सुन्दर और शिक्षा शब्द क्रमश सुन्दरम् तथा शिवम् के बोधक हैं। भारतीय मनीषा सहस्रो वर्षों से जीवन जगत् मे इन्ही की खोज करती आई है। गीता की दाशनिक दृष्टि सत्यम्, प्रियम् तथा शिवम् मे ही जीवन का सर्वोत्कृष्ट रूप देखती है। मिश्रजी आलोचना-शक्ति (प्रतिभा) को सस्कृताचार्यों के समान ही ईश्वरप्रदत्त मानते हैं। यह भी स्मरण रखना चाहिये कि आलोचना शक्ति भी स्वाभाविक है, उस शक्ति की केवल शिक्षा द्वारा सृष्टि नही की जा सकती। यह भी सत्य है कि कवि और औपन्यासिको

---

1 माधव मिश्र निबन्ध माला, साहित्य खण्ड, पृष्ठ 25

के समान समालोचक भी माता के गभ से उत्पन्न होते हैं, कही गढे नही जाते ।[1] इसके साथ ही वे आलोचक के लिए अलकार, विज्ञान, भाषा, साहित्य का इतिहास, रचना प्रणाली के विविध रहस्यो की शिक्षा भी आवश्यक मानते है । वस्तुत मिश्रजी आलोचक को स्वकाय मे एक विशेषज्ञ के रूप मे देखना चाहते है । उनके समय मे स्तरीय आलोचना का अभाव था । ऐसे ऐसे आलोचक थ जिन्हे साहित्य और भाषा के इतिहास तक का ज्ञान नही था । इस समय की अधिकाश आलोचना राग-द्वेषाधारित थी । परवर्ती साहित्य के इतिहास मे द्विवेदीयुगीन आलोचना को 'छिद्रान्वेषी आलोचना' तक कहा गया है । मिश्रजी इस आलोचक धम से परिचित थे वे कृति की आलोचना करते थे, कृतिकार की नही और न ही उसके मुह की ओर देखते थे । उन्होने अपने कम का स्पष्टीकरण करते हुए अपनी सामयिक स्थिति की व्यजनाभिव्यक्ति निम्नलिखित शब्दो मे की है—'अवश्य ही हमने किसी के मुँह की ओर दृष्टि न कर उसके लेख की ओर दृष्टि रखी ।"[2] श्रीधर पाठक की रचनाओ की आलोचना इसका प्रत्यक्ष तथा प्रबल प्रमाण है । 'ऊजडा ग्राम' के काव्यागो की मुक्तकण्ठ से प्रशसा की किन्तु गुणवत हेमत' के दोष दिखाने मे पीछे नही रहे ।

मिश्रजी के आलोचक का सबसे महत्त्वपूण पक्ष है स्पष्ट दृष्टिकोण । उन दिनो हिन्दी उपन्यासो की आलोचना करते हुए वे कादम्बरी का मुँह नही देखते । वे इसे नयी गद्य विधा के रूप मे स्वीकारते है । 'हिन्दी मे प्रथम तो उपन्यास लिखने की प्रथा ही न थी, इधर थोडे दिनो मे गिनती के कई उपन्यास दिखायी देने लगे हैं तो सम्पादक और आलोचक महोदय लेखको का उत्साह बढाने के बदले उनको हतोत्साहित करने मे लगे हैं । यहा तक कि समालोचना करते करते अपने घर मे उन्होने नियम गढ लिये है और बात बात मे निज निर्मित नियम तथा प्रथा की दुहाई देते है ।[3] देवकीनन्दन खत्री के उपन्यास 'चन्द्रकान्ता' को लेकर उस समय आलोचक वर्ग मे सम्भव और असभव को लेकर विवाद चला । इस पर मिश्रजी ने अनेक तर्कों द्वारा असम्भव और सम्भव की विवेचना कर उसकी कलात्मकता की सराहना की । उपन्यास विधा के प्रोत्साहन के लिए मिश्रजी ने 'सुदशन मे पुरस्कार की घोषणा की थी ।[4] इस सन्दभ मे नैषधचरित सम्बन्धी मिश्रजी का मत पठनीय है—"हमारा यह आग्रह नही कि नैषधकाव्य निर्दोष है । किन्तु दोष जो उस पर लगाये गये हैं, उनका वह पात्र नही है । 'तुष्यतु न्याय' से मान लिया जाए कि नैषध मे अतिशयोक्ति बहुत है तो यह भी हष का दोष नही है। दोष है, साहित्यशास्त्र के उन कणधारो का जिन्होने अतिशयोक्ति की भी अलकारो मे गणना स्वीकार की है । कविहृदय से भाव्य को समझना चाहिए, नही तो काव्य मे रखा ही क्या है ? जिधर

1 माधव मिश्र निबन्धमाला साहित्य खण्ड, पृष्ठ 25
2 वही पष्ठ 26
3 वही पष्ठ 95
4 धमयुग 34/14, पष्ठ 32

देखिये उधर 'सव गप्प वतते' ।"[1] प्रस्तुत उद्धरण मिश्रजी के साहित्य विषयक दृष्टिकोण तथा सवेदनशील सहृदयता का प्रत्यक्ष प्रमाण है ।

साहित्य-विषयान्तगत 'हिन्दी भाषा', 'एक लिपि किस प्रकार होगी ?', 'अदालत मे नागरी'[2] लेखो की गणना की जा सकती है । भाषा सम्बन्धी मिश्रजी की मान्यताओ मे आज के भाषाशास्त्रियो की मान्यता से शब्दावली की भिन्नता है । भाव और पकड की नही । यथा देव, असुर और आय अनाय शब्दो की जब से ससार मे सृष्टि हुई, उसी सष्टि के आदिकाल (वैदिककाल) से दो भाषाएँ चली आयी है । एक का नाम सस्कृत भाषा और दूसरी का असस्कृत भाषा । वर्तमान शब्दावली सस्कृत तथा प्राकृत के स्थान पर सस्कृत असस्कृत के प्रयोग के साथ इसके विकास और इतिहास पर भी उनका मत द्रष्टव्य है—"यदि सस्कृत शब्द देवभाषा मे 'रूढ' न हुआ होता तो आज हम गँवारी और दिहाती भाषाओ की अपेक्षा 'हरिश्चन्द्री हिन्दी' को सस्कृत के नाम से पुकारते ।"[3]

मिश्रजी ने इस 'हिन्दी भाषा' शीषक लेख मे न केवल सैद्धान्तिक और ऐतिहासिक प्रश्नो की चर्चा की है अपितु उसके व्यवहारिक पक्ष पर भी विचार किया है । बालको को सवप्रथम किस भाषा मे शिक्षा दी जानी चाहिए ? उनके समय मे प्राय छ भाषाओ मे शिक्षा दी जाती थी—उर्दू, फारसी, अरबी, अग्रेजी, सस्कृत और हिन्दी अथवा मातृ भाषाएँ । इस सम्बन्ध मे मिश्रजी स्पष्ट लिखते हैं, "अरबी, फारसी और सस्कत बालको की मातृ भाषा नही अत इनमे शिक्षा देना अनुचित है वरन भ्रूण हत्या जैसा जघन्य काय है ।" इस सन्दर्भ मे अमातृभाषाओ मे शिक्षा देने के अनेक दोषो को गिनाते हुए अन्त मे लिखा है—"जिसका अन्तिम बुरा फल यह होता है कि बालको का सीधा सादा हृदय व्याकुल हो विद्योपाजन को भार समझने लगता है ।"[4]

मिश्रजी ने भाषा के ध्वनि विज्ञान की ओर भी ध्यान दिया और बाल मनोविज्ञान तथा शिक्षा-पद्धति को दृष्टि मे रखते हुए हिन्दी के साथ उर्दू और अग्रेजी के वर्णों पर विचार किया और हिन्दी की ध्वनि क्षमता का प्रतिपादन । इस सन्दभ मे दूसरा महत्त्वपूण निबन्ध है 'अदालत मे नागरी' जिसमे अदालत मे हिन्दी की स्थिति पर विचार करने के साथ अनेक ऐतिहासिक प्रश्नो का विवेचन किया है और उन अधुना विद्वानो जो यह मानत हैं कि सस्कृत कभी बोलचाल की भाषा नही रही का सतक खण्डन करते हैं । काशी नागरी प्रचारिणी सभा की स्थापना भी इसी उद्देश्य से हुई थी ।

'एक लिपि किस प्रकार होगी ?' जैसे अत्यन्त महत्त्वपूण, जनोपयोगी तथा राष्ट्रीय एकता के वाहक प्रश्न को लेकर देश के विद्वान् अनेक बार विचार-विमश कर चुके हैं, विभिन्न सभा समितियो द्वारा 'एक लिपि' तैयार भी की गयी किन्तु आज तक

---

1 माधव मिश्र निबन्धमाला, साहित्य खण्ड, पृष्ठ 35
2 'सुदर्शन' प्रथम वष, पृष्ठ 1-2
3 माधव मिश्र निबन्धमाला, साहित्य खण्ड, पृष्ठ 36
4 वही

वही 'ढाक के तीन पात' वाली उक्ति चरितार्थ होती रही है। मिश्रजी के समय तक इस दिशा मे इतनी व्यापक दृष्टि से किसी ने सोचा भी नही था। [illegible] उन विद्वानो तथा देश भाषा प्रेमियो की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की जो अहिन्दी प्रदेशो मे नागरी के प्रचार प्रसार की चेष्टा कर रहे थे जैसे कलकत्ता के जस्टिम शारदाचरण मिश्र और बम्बई के प० मनसुखरामजी त्रिपाठी। उन्हे दुख था तो यह कि हिन्दी अपने ही घर (प्रदेश) मे उपेक्षित थी। प्रयाग के हिन्दू वकीलो के सम्बन्ध म उनका कथन उनकी अतर्वेदना का प्रमाण हे— 'हमारे निवेदन का तात्पय यह है कि लखनऊ के उर्दू प्रेमी मुसलमान बैरिस्टरो और प्रयाग के हिन्दी हितैषी हिन्दू वकीलो की न्यायालय सम्बन्धी कायवाही मे कितना अन्तर है ? प्रयाग में अब भी कारी उर्दू मे ही कार्यवाही लिखी जाती है। इसी प्रकार जयपुर के महाराज और काशीनरेश हिन्दू धम के अनुरागी हैं, सस्कृत के प्रेमी है पर उनके न्यायालयो मे डके की चोट उर्दू का प्रचार हो रहा है। इतने पर भी उनके परिषद् और स्तावक उन्हे मातृभाषा प्रेमी कहते नही लजाते।'[1] एक लिपि का प्रश्न आज भी अधर मे लटका हुआ है और इस राष्ट्रीय महत्त्व के प्रश्न को सभी वग अपनी अपनी स्वाथसिद्धि का साधन बनाने मे समय-समय पर आगे पीछे होते रहते है।

हिन्दी निबन्ध विधा और मिश्रजी

शैली तत्त्व साहित्य की सभी विधाओ मे अपेक्षित ही नही, विशिष्ट स्थान रखता है। व्यक्ति का निजत्व' इसी तत्त्व के माध्यम से प्रकट होता है। निबध विधा मे 'निजत्व' का अन्य विधाओ की तुलना मे अधिक महत्त्व है। शैली के मूल उपकरणो मे शब्द-योजना, वाक्य-विन्यास तथा भाषा की गणना की जाती है। 'विचार या भाव तो निबध की आत्मा है, भाषा शरीर और शैली जीवन या प्राण।"[2] डा० श्याम वर्मा ने अपने शोध-प्रबध मे पाश्चात्य और भारतीय अनेक विद्वानो के मतो का विवेचन करते हुए लिखा है, "इनका मूलाधार तत्त्व विचार है। इससे इतना तो स्पष्ट ही है कि शैली का सम्बन्ध विचारो से है फिर चाहे उसे विचारो की पोशाक, चमडा, जीवन्त शरीर अथवा अवतार ही क्यो न कहा जाय।"[3] वस्तुत शैली एक माध्यम है लेखक और पाठक के मध्य जिसके द्वारा लेखक अपने अनुभूत विषय को पाठक के मन पर अकित करने मे सफल होता है। यह सफलता शैली पर आधारित है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व की सहज तथा सबल अभिव्यक्ति की परिचायक है।

सामान्यत निबधकार को शैली निर्माता माना जाता है। सस्कृताचार्यों ने वैदर्भी गौडी तथा पाचाली आदि रीतियो का सम्बन्ध देश विशेष के साथ जोडा था। वस्तुत यह मत वैज्ञानिक नही है क्योकि किसी भी भाषा की सामान्य प्रकृति या रीति तो एक हो सकती है किन्तु उस भाषा के स्थानीय भेदो की रीति तथा प्रकृति परिवेशानुसार

---

1 माधव मिश्र निबन्धमाला, साहित्य खण्ड, पृष्ठ 88

2 हिन्दी निबधकार, पृष्ठ 5

3 आधुनिक हिन्दी गद्य शैली का विकास, पृष्ठ 79

भिन्न होती है। साहित्यकार जिस परिवेश से आता है, उसकी भाषा पर स्थानीय परिवेश की भाषा की रीति प्रकृति का प्रभाव पडना अनिवाय है। भाषा का व्यक्तित्व लेखक की रुचि, प्रकृति, विचार दशन, सरल गाम्भीय स्वभाव तथा स्वभावगत व्यजना पद्धति पर आधारित होता है और यही व्यक्तित्व निबधकार को शैली निर्माता बनाता है। अन्तत कहने का अभिप्राय यह है कि लेखक के व्यक्तित्व के अनुरूप ही उसके शैली शिल्प की सृष्टि होती है। श्री चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, प्रो० पूर्णसिंह तथा आचाय रामचन्द्र शुक्ल आदि इसके प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। प० माधव प्रसाद मिश्र भी इसी श्रेणी के शैली निर्माता है।

उपयुक्त विवेचन से व्यक्ति, व्यक्तित्व और शैली की अभिन्नता स्वत सिद्ध हो जाती है। मिश्रजी के साहित्य मे शैली के विविध रूपो के दशन होते हैं। परम्परागत समास तथा व्यास शैली आदि के अतिरिक्त विवरण तथा वणनात्मक शैली के दशन उनके 'यात्रावृत्तो' मे स्पष्टत किये जा सकते है। 'समाज' और 'व्यास' शैली के उदाहरण 'भारतीय दशनशास्त्र, चार्वाक दशन की भूमिका', 'बेबर का भ्रम तथा तलबकारोप निषद्' आदि हैं। इनके अतिरिक्त उनकी व्यग्य तथा 'पाण्डित्यपूण शैली' को ऐतिहासिक तथा समसामयिक साहित्यकारो की समकक्षता मे परखा जा सकता है। सामान्यत हिन्दी विद्वानो ने निबध की प्रमुख चार शैलीया मानी है—समास शैली, व्यास शैली, धारा शैली और विक्षेप शैली। विक्षेप शैली को छोडकर शेष सभी शैलियाँ प० माधव प्रसाद मिश्र के निबध साहित्य मे मिलती हैं। आचाय रामचन्द्र शुक्ल के शब्दो मे—'उनके निबध अधिकतर भावात्मक होते थे और धारा शैली मे चलते थे।"[1] इसी सदभ मे शुक्लजी ने 'रामलीला' तथा 'सब मिट्टी हो गया के उदाहरण उद्धृत किये है। हमारे विचार से मिश्रजी के कतिपय निबधो मे ही धारा शैली तथा भावात्मकता की प्रधानता है। उपयुक्त निबधो मे कुछ अनुच्छेद 'गद्य गीत' का रूप लिए हुए है और भारतीय गौरवमय अतीत का चित्र मानसपटल पर अकित कर देते हैं।

मिश्रजी के दशन विषयक निबधो की शैली प्रधानत समास शैली है। किन्तु पत्रकार होने के कारण वे समास और व्यास शैली को साथ साथ लेकर चले है जिससे विषय का स्पष्टीकरण होने के साथ भाषा सहज, सुबोध बन गयी है। विषय की गम्भीरता के प्रतिपादन मे भी मिश्रजी की लेखनी व्यग्य करने मे नही चूकती। मिश्रजी के निबधो की जीवन्तता का मूलाधार उनका व्यग्य है जो व्यक्ति सापेक्ष न होकर विषय सापेक्ष है। हास्य का उथलापन वहाँ नही है। हास्य और व्यग्य का अतर करते हुए व्यग्य लेखक शातिदेव ने लिखा है—"हास्य बाहरी विकृति को लेकर चलता है और व्यग्य भीतर और बाहर की विसगति या विकृति को।"[2] मिश्रजी के व्यग्य या व्यग्यवाक्य शब्द पर आधारित न होकर 'व्यवहार की विकति' पर आधृत है। मिश्रजी व्यग्य की इस प्रकृति

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 489
2 अणिमा, अगस्त, 1974, बदरपुर की रत और हिन्दी व्यग्य, पृष्ठ 38

से भी भली भाँति परिचित है कि "किसी को तू न कहकर आप कहना भी व्यग्य है।"[1]

इस सदर्भ मे 'बेबर का भ्रम' लेख का यह अश द्रष्टव्य है—"किन्तु बेबर साहब का विश्वास है कि वे चतुर्वेद भाष्यकर्त्ता सायणाचाय की अपेक्षा सस्कृत अच्छी जानते हैं' तथा 'बहुत से लोग बिना विचारे ही केवल योरोपीय पण्डितो का मत समझकर उस वेदवाक्य मान लेते है। इन गौराग गुरुओ के शिष्य कोई सामान्य कुल के नही है, प्रत्युत द्विवेदी, त्रिवेदी, चतुर्वेदी और पाठक वश के पुरुष है जो अपने पथ प्रदशको को आदरणीय श्रद्धा भाजन और सस्कृत का परम विद्वान् भी मान रहे है।"[2] मिश्रजी के व्यग्य का एक उदाहरण श्रीधर पाठक के सम्बन्ध मे भी पठनीय है—"यदि इस पण्डित महावीर प्रसाद जी के समान समीचीन समालोचक और कवि हुए होते तो हम 'गुनवत हेम त' को देखकर अवश्य ही एक 'श्रीधर सप्तक' व 'श्रीधराष्टक' स्तोत्र बना डालते और उसमे वणन करते हे प्रभो! कवीन्द्र चूडामणे। आपकी महिमा अपरम्पार है। हेमन्त का वणन तो बडे बडे कालिदासादि महाकवियो ने भी किया था पर एक क्षुद्र पद्य मे उसका कुछ अल्प ही वणन कर उसे 'गुनवन्त' बना देना यह किस की सामथ्य थी? परन्तु धन्य है आपको जिस समय भारतवष मे शुष्क के अतिरिक्त सरस हरित पत्र भी नही दिखायी देता था, आपको उस समय भी दिव्य दृष्टि से हरे भरे सरस खेत दिखायी दिये। यही नही, श्रीमान् की दिव्य दृष्टि ने और भी कमाल किया है। सडको पर बाजारो मे फिरते हुए दुर्भिक्ष दलित पुरुष तो दृष्टिगोचर नही हुए पर अन्तरग रहस्यमय 'सुरति सुख' को देखने मे दूरबीन को भी मात कर गये। 'श्रीधर' नाम को साथक कर दिया। धन्य! विचित्र कवि!! धन्य!!!"[3] प्रस्तुताश मे व्यक्ति पर व्यग्य होते हुए भी वह वैयक्तिक नही है, अपितु उसके कवि की अभिव्यक्ति और दृष्टि पर है।

मिश्रजी गम्भीर विषय तथा विवादपूण समस्या पर जब लेखनी उठाते है, तब उसका विवेचन पाण्डित्यपूण पद्धति से करते हुए सस्कृत सूक्तियो, मुहावरो तथा उद्धरणो का पर्याप्त सहारा लेते है। 'बेबर का भ्रम' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। विषयानुरूप हिन्दी तथा उर्दू के मुहावरो और लोकोक्तियो का सहज साहित्यिक प्रयोग मिश्रजी की साधना मे सवत्र उपलब्ध है। जहाँ वे खडी बोली के मुहावरे का प्रयोग करते है, वहा फारसी कहावत को भी अपनाने मे सकोच नही करते। यथा 'दूध का जला छाछ फूककर पीता है' और 'खुदरा फजीस्त दीगरा नसीहत'। इन्ही सब गुणो को दृष्टि मे रखते हुए आचार्य शुक्ल ने उनकी शैली को 'बहुत प्रगल्भ' माना है।

मिश्रजी के निबन्धो मे सस्कृत, उर्दू, फारसी तथा अग्रेज़ी आदि भाषाओ के शब्दो का सहज प्रयोग है जो उनकी समाहार दृष्टि तथा व्यापक अध्ययन का प्रमाण है।

1 सचेतना, सितम्बर, 1972, पृष्ठ 59
2 माधव मिश्र निबन्धमाला, पुरातत्व खण्ड, पृष्ठ 25
3, वही, साहित्य खण्ड, पृष्ठ 28

अँग्रेजी के उन्ही शब्दो का प्रयोग उन्होने किया है जिनके पर्याय रूप उस समय तक हिन्दी मे प्रचलित नही थे। वे व्यवहार की नीति के अनुसार ही भाषा नीति के पक्षधर थे, यह पत्रकारिता का एक सहज सामान्य अनिवार्य अग है। सस्कृत के तत्सम शब्दो मे प्रणीत सुतरा, समीक्षा, प्रभृति, चान्द्र नक्षत्र मण्डल, चर्वित, चवणा तथा अनल्प आदि, तद्भव शब्द नगी, लोग, लिस, देशी शब्द झीभर, जानबूझ, सडा, रोला पिण्ड आदि तथा उर्दू शब्द याद, कारीगरी, सैर, सफर, आदम, हिसाब आदि का सहज रूप मे प्रयोग मिश्रजी की भाषा मे विषय तथा प्रतिपादन के अनुरूप हुआ है। मिश्रजी ने सस्कृत सूक्तियो के अतिरिक्त प्रचलित लोकोक्तियो और मुहावरो का प्रयोग भी प्रचुर मात्रा मे किया है। यथा "अपने लोग चाहे कितने ही बुरे क्यो न हो, अन्त को अपने अपने ही है।' अपना यदि मारे भी तो छाया मे रखता है।' जले पर नून', 'हथियार बाधना', 'कलेजा थामना', 'दिन दूनी रात चौगनी' तथा 'होम करते हाथ जलना' आदि के प्रयोग से भाषा सुष्ठु, सशक्त तथा सहज ग्राह्य बन गयी है।

अन्तत विषय, भाषा तथा प्रतिपादन शैली और शिल्प की दृष्टि से मिश्रजी के निबन्धो का भारतेन्दु और शुक्ल युग के निबन्धो के विकासक्रम मे एक महत्त्वपूण स्थान स्वत सिद्ध हो जाता है। मिश्रजी के निबन्धो मे शुक्लयुगीन निबन्ध विधा के तत्त्व पूणरूपेण देखे जा सकते हैं। शुक्लजी के निबन्धो मे लोकमगल की भावना, विचारो का गुम्फन, भावो की तरलता के साथ भाषा और शैली की जो विषयानुकूल सहज अभिव्यक्ति और विनोदमयता है जिनके आधार पर शुक्लजी को निबन्ध विधा के इतिहास मे एक मानक माना जाता है। इन सबका पूण रूप यदि कही देखा जा सकता है तो प० माधवप्रसाद मिश्र के निबन्धो मे। जिस प्रकार आज इस विधा के अन्तगत आचाय शुक्ल को भारतेन्दु तथा द्विवेदी युग और डा० नगेन्द्र, आचाय नन्ददुलारे वाजपेयी तथा आचाय हजारीप्रसाद द्विवेदी के मध्य, पूर्व के सरक्षक और परवर्ती युग के प्रेरक रूप मे स्वीकार किया जाता है, ठीक उसी प्रकार यदि हम पूर्वाग्रह से मुक्त होकर विवेचन करे तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र और आचार्य शुक्ल के मध्य प० माधवप्रसाद मिश्र को प्रतिष्ठित किया जाना चाहिए जिसके वे सर्वांश अधिकारी हैं।

4
कहानीकार पं० माधव प्रसाद मिश्र

कहानी की कहानी

कहानी के इतिवृत्त के सम्बन्ध मे विद्वानो मे मतैक्य नही है। कुछ विद्वान् 'आख्यान' के रूप मे इसके बीज ऋग्वैदिक काल मे देखते है तो कुछ अन्य विद्वान् उसके आधुनिक रूप की दुहाई देते हुए इसे अँग्रेज़ी साहित्य की देन मानते है जो बगला के माध्यम से हिन्दी मे आयी।[1] पुरातन कथात्मकता की झलक 'रानी केतकी की कहानी', 'सिंहासन बत्तीसी', 'बेताल पच्चीसी', 'माधवानल कामकन्दला', 'शकुतला', 'नासिकेतोपाख्यान', 'गोरा बादल की कथा' तथा 'राजा भोज का सपना' आदि रचनाओ मे देखी जा सकती है।

हिन्दी कहानी का शैशव प्राय दो स्रोतो से सम्बन्धित तथा प्रभावित रहा—एक सस्कृत कथा साहित्य और लोक प्रचलित मौखिक कथा (लोक साहित्य) से और दूसरा फारसी तथा उससे प्रभावित उर्दू अफसाना साहित्य से। इन वर्गों के अन्तगत क्रमश 'शुकबहत्तरी', 'सारगा सदावृत', 'किस्सा तोता मैना', 'किस्सा साढे तीन यार' तथा 'बागोबहार', 'किस्सा हातिमताई', 'चार दरवेश', 'दास्तान-ए अमीर हमजा' और तिलस्म ए होशरुबा' की गणना की जा सकती है। इस समय मे जादू, कुतूहल और वासनामूलक प्रेम की कहानियाँ ही भारतीय जनता का मनोरजन कर रही थी।[2]

पाश्चात्य सस्कृति के प्रभाव तथा उसके भौतिकवादी दृष्टिकोण के परिणाम तथा प्रतिक्रियास्वरूप भारत के जन सामान्य मे राष्ट्रीय जागरण, व्यक्ति स्वातत्र्य की भावना और पुरातन सस्कृति को जानने की जिज्ञासा बलवती हो उठी। मुद्रण की सुविधा सुलभ होने पर इन भावनाओ का वहन कथा-साहित्य की कहानी विधा ने किया। प्रारम्भिक अवस्था मे 'हिन्दी प्रदीप' के माध्यम से 'कात्यायन वररुचि' की कथा तथा 'उपकोशा की कथा' आदि पौराणिक आख्यान हिन्दी मे अवतरित हुए। इस दिशा मे 'सरस्वती' और 'सुदर्शन' ने भी महत्त्वपूर्ण योग दिया। 'सरस्वती' मे 'रत्नावली', 'मालविकाग्निमित्र' तथा 'कादम्बरी' आदि प्रकाशित हुई तो 'सुदर्शन' के अन्तगत 'प्रोहित की आत्म

---

1 हिन्दी साहित्यकोश, भाग 1, पृष्ठ 229
2 वही, पृष्ठ 237

कथा', 'मन की चचलता', 'दयालु मिथिलेश', 'सत्य और स-तोष का फल' प्रकाशित हुइ।[1] इनके अतिरिक्त प० माधव प्रसाद मिश्र ने 'वैश्योपकारक' मे भी पुराण प्रसिद्ध आख्यानो को कहानी का रूप दिया। वस्तुत ये रचनाएँ पौराणिक आख्यानो पर आधारित होते हुए भी कथा के कथ्य की रोचकता, विषय प्रतिपादन की सजीवता के साथ भाषा की प्रौढता तथा युग परिवेश की दृष्टि से अवलोकनीय है। प० माधव प्रसाद मिश्र ने यथार्थपरक कहानियो का सूत्रपात भी किया। 'दया का फल', 'जापानी मारवाडी' (पत्रात्मक) आदि रचनाओ के साथ अपने समय की बहुचर्चित रचना 'लडकी की बहादुरी' इसी पत्र मे प्रकाशित हुई।

आधुनिक हिन्दी कहानी के इतिहास के विषय मे भी विद्वान् एकमत नही हैं। सामान्यत सन् 1900 मे 'सरस्वती' मे प्रकाशित 'इन्दुमती' को हिन्दी की समसामयिक अनूदित और मौलिक कहानियो मे प्रथम माना जाता है। गत दो वर्षों मे भी इस विषय पर कई पत्र-पत्रिकाओ मे परिचर्चा हुई है जिसमे 'इ दुमती' के पिष्टपेषण के अतिरिक्त माधवप्रसाद सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' जो कहानी के कलात्मक तत्त्वो की दष्टि से सवथा दूर है, मे भी उपदेशात्मकता का स्वर ही प्रखर है। अद्यतन 'सचेतना' मे डा० वेदप्रकाश अमिताभ ने किशोरीलाल गोस्वामी कृत 'प्रणयिनी परिणय' की चर्चा करते हुए 'छली अरब की कथा' को प्रथम मौलिक कहानी कहा। सखेद लिखना पडता है कि डा० अमिताभ ने प० माधवप्रसाद मिश्र के सम्बन्ध मे 'प० माधवप्रसाद मिश्र का प्रमुख कथा साहित्य' का नाम भर लिया, उसे पढने का कष्ट नही किया अन्यथा कहानी का शीषक 'लडकी की बहादुरी' के स्थान पर 'लडकी की कहानी' न लिखते।[2] इसी प्रकार इस सदभ मे पत्रकारिता की गुटबदी ने इसे प्रकाश में नही आने दिया। एक पत्रिका मे कम्पोज़ हुआ मैटर भी रोक दिया गया क्योकि एक अन्य राजनीतिक साहित्य कार महोदय का 'प्रणयिनी परिणय' सम्ब-धी लेख आ गया था। वैसे सन 1900 से 1911 ('इन्दु' मे प्रकाशित 'ग्राम' कहानी) तक का समय इस विधा के लिए विवादास्पद विषय रहा है। आचाय शुक्ल ने प्रारम्भिक स्थिति का विवेचन करते हुए लिखा है—"इनमे मार्मिकता की दृष्टि से भावप्रधान कहानिया चुनने लगें तो तीन—" 'इ दुमती', 'ग्यारह वष का समय' और 'दुलाई वाली' कहानियाँ मिलती है। यदि 'इन्दुमती' को किसी बगला कहानी की छाया न माना जाए तो यही हिन्दी की पहली मौलिक कहानी ठहरती है। इसके उपरात 'ग्यारह वर्ष का समय' और फिर 'दुलाई वाली' का नम्बर आता है।"[3] इस कथन मे सदेहास्पद वाक्य लिखकर आचाय शुक्ल ने प्रकारातर से अपनी कहानी को प्रथम मौलिक कहानी मानने का सकेत दे दिया।

डा० लक्ष्मीनारायण लाल ने अपने शोधप्रबध 'हिन्दी कहानी की शिल्पविधि का विकास' के अन्तगत प्रारम्भिक प्रयत्न और प्रयोगो को हि-दी कहानी की शिल्पविधि मे

1 'सुदशन' 1/12, 2/2, 6, 7, 8 तथा 3/4
2 सचेतना 13/4
3 हिंदी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 481

अनन्य स्थान देते हुए इनकी सात अवस्थाएँ मानी है—

(1) नाटको की इतिवृत्ति की छाया पर अन्य पुरुष और वणनात्मक शैली की रचनाएँ—जैसे 'इन्दुमती'।

(2) भारतेन्दुयुगीन स्वप्नात्मक जैसे 'आपत्तियो का पहाड' लेखक – केशव, प्रसाद सिंह।

(3) दूर देश के काल्पनिक चरित्रो को लेकर मौलिक सवेदनात्मक रचना जैसे 'पति का पवित्र प्रेम', लेखक गिरिजादत्त वाजपयी।

(4) यात्रा वणन के माध्यम से कहानी का आकार खडा करने का प्रयोग, यथा 'चन्द्रलोक की यात्रा', लेखक केशवप्रसादसिंह।

(5) आत्म कहानी की शैली 'दामोदरराव की आत्म कहानी' लेखक कार्तिक प्रसाद खत्री।

(6) सस्कृत नाटको की आख्यायिकाएँ जैसे 'रत्नावली', लेखक श्रीहष।

(7) वणन तथा विश्लेषणात्मक शैली के सामाजिक सवेदना के इतिवृत्त को बाँधने का प्रयास 'प्रेम का फुवारा' लेखक लाला पावतीनन्दन।

उपयुक्त विवेचन मे आचाय शुक्ल का अपनी कहानी 'ग्यारह वष का समय' को सवप्रथम मौलिक कहानी बताने की ओर सकेत तथा डा० जयचन्दराय और डा० लक्ष्मी नारायण लाल प्रभृति विद्वान् भी इसका समथन करते दिखायी देते हैं। लेकिन इस सम्बन्ध मे हमारा स्पष्ट मत है कि आचाय शुक्ल के समान ही उनके परवर्ती साहित्य मनीषियो ने समसामयिक उपलब्ध सामग्री मे इस विधा का समुचित अन्वेषण नही किया। यदि विद्वानो ने 'सरस्वती' के साथ 'सुदशन' और 'वैश्योपकारक' आदि पत्रो का अवलोकन, पारायण किया होता तो हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी का श्रेय माधव प्रसाद मिश्र की कहानी 'लडकी की बहादुरी' को मिलता। साहित्यकोशकार के शब्दो मे 'सरस्वती' मे 1900 मे किशोरीलाल गोस्वामी की 'इन्दुमती' कहानी प्रकाशित हुई जो परम्परागत अनूदित या तथाकथित मौलिक कहानियो से सवथा भिन्न प्रकार की थी। यद्यपि इस पर शेक्सपियर के 'टैम्पेस्ट' तथा किसी राजपूत कहानी का प्रभाव माना गया है। इसी प्रकार दुलाई वाली' कहानी 'सरस्वती' मे 1907 मे प्रकाशित हुई जो हिन्दी की प्रथम मौलिक आधुनिक कहानी है और दूसरी 'इन्दु' मे प्रकाशित पसाद की कहानी ग्राम' है।[1] उक्त कथन से आधुनिक हिन्दी कहानी का समय सन् 1907 से पूव किसी भी दशा मे सिद्ध नही होता। अत विषय प्रतिपादन, भाषा शैली तथा उद्देश्य और शिल्प की दृष्टि से वैश्योपकारक' मे सन् 1904 मे प्रकाशित 'लडकी की बहादुरी' कहानी प्रत्येक दृष्टि से हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी सिद्ध होती है।

प० माधवप्रसाद मिश्र की कहानियो के साथ हम तभी न्याय कर सकते हैं जब समसामयिक परिस्थितियो क परिप्रेक्ष्य म उनका समालोचन किया जाए। उस समय

1 हिन्दी साहित्यकोश, भाग 1, पृष्ठ 237

हि्दी कहानी की स्वरूप ही निश्चित नही हो पाया था। 'इन्दुमती' और 'ग्यारह वर्ष का समय' आदि कहानियो मे मौलिकता और यथाथ के दशन नही होते। अत इन्हे हि दी की मौलिक कहानी के रूप मे स्वीकार नही किया जा सकता। इसका एक प्रबल कारण यह भी हे कि भारतेन्दु और द्विवेदी युग मे प्राय अनूदित कहानिया ही पत्र पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती थी। इनमे पौराणिक आख्यान, बगला गल्प अथवा अँग्रेजी कहानियो का अनुवाद अथवा छायानुवाद ही होता था। आधुनिक कहानी कला मे ये कहानिया सवथा वचित थी, इनका भारतीय जन जीवन से सीधा सम्बन्ध नही हे। उस समय के लेखक प्राय कल्पनालोक मे विचरण करते थे। इस परिप्रेक्ष्य मे प० माधव प्रसाद मिश्र ने अपनी सामाजिक कहानियो का सम्बन्ध यथाथ जीवन से जोडा और कहानी विधा को मौलिकता प्रदान की। इस सम्बन्ध मे प० राधाकृष्ण मिश्र के शब्द द्रष्टव्य है—"जिस समय ये कहानिया लिखी गयी थी, तब बग-साहित्य में रवीन्द्र, प्रभात, नगेन्द्र आदि लेखको के गल्पो की धूम पड चुकी थी और हिन्दी साहित्य के अधेरे आकाश मे मुरादाबाद की 'प्रतिभा' के पति और प्रेमचन्द जी तो चमके ही नही थे। पर 'श्रीवास्तव जी' वास्तव मे तब तक उदयगिरि की ओट मे ही बैठे हुए थे।"[1]

इस सन्दर्भ मे इस ऐतिहासिक चर्चा के पश्चात् उस समय के गल्पो के विषय में विचार करना अनुचित न होगा। "बगला के महाकवि द्विजेन्द्रलाल ने अपनी 'पाषाणी' नाटिका मे गौतम पत्नी शतानन्द माता प्रात स्मरणीय अहिल्या का जो उद्वेगकर चित्र अकित किया है, वह क्या फ्रासीसी विलासिता की नगरी पेरिस की किसी बाजारू व्यभि चारिणी पिशाचिनी से भी अधिक भयानक नही हो गया है ? कविवर रवीन्द्रनाथ अपने गल्पो मे बरामदे मे पढते हुए रूपवान नवयुवक के सामने किसी हिन्दू विधवा के ब्रह्मचय का दुष्परिणाम मकान की छत पर बैठाकर दिखाते है, उसके क्या माने है ? ऐसे समय मे प० माधवप्रसाद मिश्र नवीन भावो के उपासक होते हुए भी नवीन भावो के नशे से उन्मुक्त होकर प्राचीन भावो की प्रतिभा पर शराब की बोतल के टुकडे नही फेकने और न ही मुनि को मिया की शक्ल मे दिखाना चाहते है और न ही उसके कमण्डल को बँधना बनाना चाहते है।"[2]

उपयु क्त कथन आधुनिक कहानी के इतिहास पर पुनर्विचार करने के लिए विवश करता है। पूर्वाग्रह मुक्त होकर यदि 'ग्यारह वष का समय' और 'लडकी की बहादुरी' पर तुलनात्मक दृष्टि से विचार करे तो कथा, शिल्प तथा तत्त्वादि की दृष्टि से मिश्रजी की रचना कही श्रेष्ठ ठहरती है और कलाक्रमानुसार वही हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी पद की अधिकारिणी है। इस कहानी मे सामाजिक यथाथ इतना सजीव और सफल रूप मे उभरा कि प्रकाशित होते ही कलकत्ता के मारवाडी समाज मे हलचल मच

1 आख्यायिका सप्तक, भूमिका, पृष्ठ 1
2 वही, पृष्ठ 3

गयी थी। उस अनुवाद युग मे इतनी सशक्त यथार्थपरक सफल कहानी लिखने का श्रेय एकमात्र मिश्रजी को है।

कहानी का शीर्षक 'लडकी की बहादुरी' यथार्थपरक, न छोटा न बडा अपितु वस्तुविन्यास का परिचायक है। शीर्षक पाठक के कुतूहल को भी जगाता है और अन्त तक बराबर बना रहता है। वस्तुविन्यास घटनाप्रधान है। घटनाओ के माध्यम से पात्रो के चरित्र को उभारा गया है। कहानी का प्रारम्भ कलकत्ता के किराये के मकान से होता है। इसके साथ ही कहानी की विषयवस्तु का परिचय मिलने लगता है और सवादो तथा घटनाओ के माध्यम से कथा उत्तरोत्तर विकसित होती चली जाती है। फल प्राप्ति पर ही कहानी का समापन किया गया है। अन्त आदर्शमय है अत यह कहना अनुचित न होगा कि मुन्शी प्रेमचन्द जी की प्रसिद्ध तकनीक आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी शैली का सफल पूर्वाभास इस रचना मे देखा जा सकता है।

पात्र चयन और चरित्र चित्रण की दृष्टि से भी प्रस्तुत रचना सफल और सशक्त है। घटनाओ मे माध्यम से गूदडमल, घापली नारायण तथा रामली आदि का चरित्र उत्तरोत्तर विकसित होता जाता है। कथोपकथन, विषय तथा पात्रानुकूल है। मुन्शी के छत्ते मे घापली और रामली का वार्तालाप, माग के सवाद जिनमे कुटनी का कौशल और चालाकी के प्रति घापली की सहज अनभिज्ञता आदि स्थल अत्यन्त मार्मिक, आकर्षक तथा कलात्मक बन पडे हैं। पात्र और सवाद योजना स्वाभाविक, जीवन्त और यथार्थ के अति निकट है।

वातावरण बडे बाजार की विविधता तथा कलकत्ता के बगीचो मे बनी मारवाडियो की विलास नगरियो का जीवन्त वर्णन कर लेखक ने कलकत्ता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

भाषा-शैली विषयवस्तु पात्र तथा वातावरण के अनुरूप है। वातावरण की सृष्टि मे मिश्रजी ने वर्णनात्मक शैली अपनायी है और चरित्र चित्रण मे नाटकीय शैली का आश्रय लिया है। मारवाडी तथा हरियाणवी भाषा के प्रयोग के कारण कहानी मे आचलिकता के साथ सहज स्वाभाविकता आ गयी है। जस्मा जाट के रूप मे हरियाणा का व्यक्तित्व सजीव हो उठता है और उसकी भाषा से कहानी आचलिक शिल्प के निकट आ जाती है। कहानी का मेरुदण्ड पुरानी खडी बोली का ही है और इस दृष्टि से यह अपने समय की श्रेष्ठ रचना है।

उद्देश्य प्रस्तुत रचना मे एक ओर कलकत्ता के धनी वर्ग की विलासप्रियता का सफल चित्रण है तो दूसरी ओर असामाजिक तत्त्वो द्वारा भोली भाली किशोरी को बहका कर भ्रष्ट पथ पर डालने वाले षडयन्त्र का भी जीवन्त वर्णन किया गया है। कथानक का उद्देश्य सेठ गूदडमल तथा रामली जैसे असामाजिक तत्त्वो से सावधान रहने के साथ साथ समय आने पर 'घापली' के समान बहादुरी और साहसपूर्वक परिस्थिति से जूझने की प्रेरणा देता है। इससे नारी जाति को बल मिलता है और उसे

अबला से सबला बनने की प्रेरणा देता है। इसके साथ ही 'जस्सा जाट' तथा 'गुप्तदानी ब्राह्मण' जैसे व्यक्तियो के प्रति आदर और श्रद्धा का भाव जागता है। अभिप्राय यह है कि लेखक अपने उद्देश्य निरूपण मे सत्य और सुन्दर के साथ साथ शिव के प्रति भी पूण जागरूक रहा है।

'आख्यायिका सप्तक'[1] के अतिरिक्त 'पुरोहित का आत्मत्याग'' 'जापानी मारवाडी' 'यक्ष युधिष्ठिर सवाद' तथा 'बडा बाजार' चार रचनाएँ 'माधवमिश्र निबन्धमाला' मे सकलित है। 'आख्यायिका सप्तक' की भूमिका मे पृष्ठ 5 पर एक अन्य रचना 'झाडूमल की करतूत' का सकेत है किन्तु यह रचना शोधावधि मे कलकत्ता, जयपुर, प० झाबरमल शर्मा, लखनऊ श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा मिश्रजी के वशजो के यहाँ भिवानी मे भी प्राप्त नही हुई। उन्नीसवी शताब्दी के अतिम चरण तथा बीसवी शताब्दी के पदापण की तैयारी के समय लेखक की रचना शैली मे निजता स्पष्ट परिलक्षित होती है। यथार्थ दशन लेखक की दूसरी विशेषता है। 'आख्यायिका सप्तक' की तीन रचनाएँ (1) लडकी की बहादुरी, (2) दया का फल, और (3) विश्वास का फल—सामाजिक है। शेष चार रचनाएँ—(1) मन की चचलता, (2) दयालु मिथिलेश, (3) पितृभक्ति का फल, तथा (4) सत्य और सतोष का फल—पौराणिक कथाधारित है। इसके अतिरिक्त 'माधवमिश्र निबन्धमाला' मे सकलित चार रचनाओ मे से 'यक्ष युधिष्ठिर सवाद' का शीषक ही पौराणिक है, विषय सर्वथा सामयिक है और रचना अनूदित है। कहानी तत्त्वो से रहित केवल सवादभर है। शेष तीनो रचनाएँ—'पुरोहित का आत्मत्याग', जापानी मारवाडी' और 'बडा बाजार' सामाजिकता से परिपूर्ण रचनाएँ है।

इन रचनाओ मे मिश्रजी के व्यक्तित्व की दो मूल भावनाएँ प्रत्यक्ष रूप से सामने आती हैं—अन्याय का विरोध और दीनो पर अनुकम्पा। इनके विषय प्रतिपादन मे लखक की जीवनदृष्टि, चिंतन-दिशा और तत्कालीन सामाजिक स्थिति के यथाथ दशन होते हैं। इनका रचयिता भावो के प्रकटीकरण, वणनशैली, भाषा प्रयोग, वाक्य विन्यास तथा मुहावरे आदि के प्रयोग मे सर्वथा अपनापन लिए हुए है। इन कहानियो मे सामयिक कुरीतियो का सजीव और प्रभावशाली वणन है। इसके विपरीत उस समय के हिन्दी कहानीकार केवल मनोरजन की दृष्टि से रचना कर रहे थे। आज का बुद्धिजीवी वग जिस यथाथ, अनुभूत सत्य, युगबोध और लेखक के साहस की चर्चा करता है, वह इन कहानियो मे पर्याप्त मात्रा मे विद्यमान है। उपलब्ध ग्यारह कहानियो मे से 'जापानी मारवाडी' जो कि पत्रात्मक शैली की एक लम्बी कहानी है, तथा 'बडा बाजार' जो एक झलकी मात्र है, को छोडकर शेष नौ कहानियो का सग्रह 'प० माधवप्रसाद मिश्र का प्रमुख कथा-साहित्य' शीषक से 'कान्ता प्रकाशन', भोलानाथ नगर (शाहदरा, दिल्ली-32) से प्रकाशित हुआ है।

---

1 सन् 1919 मे प० देवीराम द्वारा मिश्र निकेतन, भिवानी से प्रकाशित सग्रह।

उपयु क्त विवेचन के आलोक मे प० माधवप्रसाद मिश्र की कहानी कला की समीक्षा 'लडकी की बहादुरी' नामक कहानी के परिप्रेक्ष्य मे की जानी चाहिए और उसम मुन्शी प्रेमचन्द के कला शिल्प तथा आदर्शोन्मुखी यथार्थवादी तकनीक के साथ अन्य कहानी तन्वो और विशेषताओ को देखते हुए उसका सही मूल्याकन कर उसे हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी होने का गौरव दिया जाना चाहिए।

5
पत्रकार पं० माधव प्रसाद मिश्र

विषय प्रतिपादन और उद्देश्य की दष्टि से पत्र पत्रिकाओं की दैनिक, साप्ताहिक, पाक्षिक, मासिक, त्रैमासिक, अर्द्धवार्षिक तथा वार्षिक आदि श्रेणिया होती हैं। इसी दष्टि से सामग्री सकलन और सम्पादन का प्रबन्ध पृथक् पृथक् ढग से होता है। दैनिक पत्र मे देश विदेश के ताजा समाचारो की प्रधानता रहती है तो साप्ताहिक मे सम सामयिक विषयो पर चर्चा के अतिरिक्त सामान्य पाठक की रोचक ज्ञानवद्धक सामग्री का आधिक्य। पाक्षिक और मासिक पत्रो मे समाचारो का प्रकाशन गौण रूप मे और पत्र के उद्देश्य को दृष्टि मे रखते हुए साहित्यिक, वैज्ञानिक, राजनीतिक तथा धार्मिक आदि विषयो पर शोधपूण तथा विशिष्ट सामग्री का प्रकाशन मुख्य रूप मे होता है। दैनिक और साप्ताहिक पत्र-सम्पादक की तुलना मे मासिक पत्र के सम्पादक के पास अधिक समय रहता है कि तु उसे उस समय का उपयोग ज्ञानवद्धक और उच्चस्तरीय सामग्री के सकलन करने मे करना पडता है। सामग्री के स्तर और विविधता की रक्षा की दृष्टि से मासिक पत्र के सम्पादक का दायित्व अपेक्षाकृत अधिक और गम्भीर होता है। उसे प्रकाशित सामग्री के प्रति अधिक सजग होना चाहिए। वह सामग्री गम्भीर तथा उच्च कोटि की हो, भले ही उसमे विषय का विस्तार अधिक न हो।[1] मासिक पत्र की सफलता स्थायी प्रभाव और महत्त्व की सामग्री पर निर्भर रहती है। मासिक पत्रो मे लेखो का प्रवेग अधिक सयत होता है। अत उत्तेजना या उत्साह उस तरह समयबिन्दु पर नही पहुँच पाता जैसा कि दैनिक पत्रो के समाचार से होता है।[2] मासिक पत्र मे निबन्ध, लेख, कथा कहानी आदि के साथ यात्रा वृत्त आदि का उचित सम्पादन भी अपेक्षित है। सामग्री चयन के साथ लेख आदि का स्थान निर्धारण भी सम्पादक की सूझबूझ का परिचायक होता है।

भारतीय राष्ट्रीय जीवन, चेतना तथा आन्दोलन मे पत्रकारिता के महत्त्व, आवश्यकता तथा युगीय अपेक्षा पर डा० अग्निहोत्री का मत द्रष्टव्य है—'स्वतन्त्रता के पूर्व पत्रकारिता राष्ट्रीय आन्दोलन का एक अग था। देश के प्रबुद्ध वग को राष्ट्रीय

1 भारतीय पत्रकार कला, पृष्ठ 182
2 वही, पृष्ठ 184

आदोलन की ओर मोडने मे इस देश के पत्रो का योगदान बहुत गौरवपूण रहा है। स्व० रामानन्द चटर्जी जैसे पत्रकारो ने प्रवासी भारतीयो के उद्धार के क्षेत्र मे जो काय किया, उसे भुलाया नही जा सकता। ऐसे तपस्वी पत्रकारो की सख्या भारतीय भाषाओ मे बहुत बडी है। यह भी एक सयोग की बात है कि स्वातत्र्य आदोलन के मूध य नेताओ मे से अधिकाश चाहे लोकमान्य तिलक, चाहे महात्मा गाधी चाहे मदनमोहन मालवीय—सभी पत्रकार रहे है। स्वतत्रता के बाद जिस तरह काव्य, कला और सगीत आदि व्यावसायिक बन गये उसी प्रकार पत्रकारिता भी। आज भारत मे पत्रकारिता व्यवसाय देश के बडे बडे अधिकॉश पत्रकार व्यावहारिक रूप मे बडे पूँजीपतियो के नौकर मात्र है। निष्पक्ष पत्रकारिता की माग आज पूर्वापेक्षा कही अधिक है। जो छोटे पत्र या पत्रिकाएँ आदर्शोन्मुख होकर आगे बढने का उपक्रम करती है, वे आर्थिक दबाव के कारण शीघ्र काल कवलित हो जाती है।'[1]

उपयु क्त कथन भारतीय पत्रकारिता के अतीत और वतमान का यथार्थ विवेचन प्रस्तुत करता है जिससे स्पष्ट है कि निष्पक्ष और आदर्शोन्मुख पत्रकारिता का अतीत भी कष्टमय था और वतमान भी निष्कटक नही है। परिणामस्वरूप स्वतत्रता के पश्चात् पत्रकारिता अपने उद्देश्य और जन सेवा से दूर होती गयी।[2]

हिन्दी पत्रकारिता मे 'सुदर्शन' का प्रवेश

सम्पादकाचाय प० अम्बिकादत्त वाजपेयी ने 'समाचार-पत्रो का इतिहास' के अन्तगत हिन्दी पत्रकारिता का विवेचन करते हुए, तीसरे दौर का प्रारम्भ 'हि दी बगवासी' से माना है। प० माधवप्रसाद मिश्र इसी दौर के पत्रकार हैं। 'हिन्दी बगवासी' तथा लाला बालमुकुन्द गुप्त के साथ मिश्रजी का निकटमत सम्बन्ध था। वाजपेयी जी 'सुदशन' के सम्बन्ध मे भ्रमात्मक सूचना दे गये है। यथा—'सुदशन' दशनशास्त्र का पत्र था जो प० माधवप्रसाद मिश्र और बाबू देवकीनन्दन खत्री के सम्पादकत्व मे काशी से निकलता था। यह लहरी प्रेस मे छपता था। पीछे $10'' \times 6\frac{1}{2}''$ के आकार मे लखनऊ से सन् 1914 से 1919 तक निकलता रहा। इस समय प० माधवप्रसाद मिश्र ही सम्पादक थे।[3]

इस कथन मे तीन बातें आपत्तिजनक तथा दशनीय है। प्रथम आपत्तिजनक बात है कि 'सुदशन' दशनशास्त्र का पत्र था। लेकिन वह केवल 'दशनशास्त्र' का ही पत्र नही था। सम्पादक की दृष्टि दर्शनोन्मुखी हो, उसका चिंतन दशनमय हो अथवा उसके परिवेश आदि को दृष्टि मे रखते हुए विवेचन अपेक्षित था न कि एक शब्द मे फतवा दे देना। 'सुदर्शन' के प्रथम अक से भारतीय दर्शन सम्बन्धी सामग्री का प्रकाशन होने

1 भारतीय समाचार पत्रो का सगठन और प्रबन्ध—प्रस्तावना, पृष्ठ 5-6
2 वही, पृष्ठ 7
3 समाचार पत्रो का इतिहास—तीसरे दौर के पत्र, पृष्ठ 237

लगा था और जैसा मिश्रजी के जीवनवृत्त तथा परिवेश का विवेचन करते हुए लिखा जा चुका है, उस समय देश को भारतीय जीवन दर्शन से परिचित कराना परमावश्यक था।

दूसरी बात है 'देवकीनन्दन खत्री जी' को 'सुदशन' का सम्पादक बताना। इस सम्बन्ध मे 'हिन्दी साहित्य सम्मेलन', 'नागरी प्रचारिणी सभा', हनुमान पुस्तकालय, सलकिया (कलकत्ता)' तथा 'कलकत्ता समाचार' के सुविज्ञ सम्पादक प० झाबरमल शर्मा (जयपुर) के निजी सग्राहलय से 'सुदशन' की फाइल देखने पर कही भी बाबू देवकीनदन खत्री का सम्पादक के रूप मे नामोल्लेख नहीं है। 'सुदशन' के मुखपृष्ठ पर खत्रीजी का नाम प्रकाशक के रूप मे अवश्य है। खत्रीजी 'सुदशन सम्बन्धी लाभ हानि के भागीदार ' अवश्य थे। मिश्रजी के जीवनवृत्त मे प० दीनदयालु शर्मा व्याख्यान वाचस्पति को 26-12-99 का लिखा पत्र उद्धृत किया जा चुका है जिससे खत्रीजी की स्थिति स्पष्ट हो जाती है।

तीसरी विचारणीय बात 'सुदर्शन के आकार और प्रकाशन की अवधि से सम्बन्धित है। 'सुदशन अपनी 2 वष 4 मास की अवधि मे एक ही आकार मे प्रकाशित हुआ। सन् 1900 के अप्रैल मे उसके मुखपृष्ठ की जो रूपरेखा निर्धारित हो गयी थी, वही अन्त तक रही और इसके साथ ही हास्यास्पद बात यह है कि 'सुदशन 1902 के माच अप्रैल अक के पश्चात् प्रकाशित ही नहीं हुआ और मिश्रजी का देहावसान सन् 1907 के 16 अप्रैल को हो गया था। इस विवेचन से एक तथ्य स्पष्टत सामने आता है कि हिन्दी साहित्य लेखको ने प० माधवप्रसाद मिश्र के सम्बन्ध मे ऐतिहासिक दृष्टि की सवथा उपेक्षा की है।

प० माधवप्रसाद मिश्र ने अथ-सकट का सामना अपने मित्रो, सहयोगियो तथा सम्बन्धियो के सहयोग से जब तक हुआ किया, अन्त मे वे टूट गये मगर झुके नहीं। वे 'सुदशन को श्रीकृष्ण भगवान् की अनुकम्पा का फल मानते थे। उनके विचार धार्मिक भावना और उदारता के द्योतक है। इस सम्बन्ध मे उनकी यह सहजोक्ति द्रष्टव्य है—"आनन्दकद व्रजचन्द श्रीकृष्णदेव की कृपा से आज हम 'सुदशन को लेकर अपने हिन्दू समाज की सेवा मे उपस्थित हुए है। 'सुदशन के दशन से हमारे समाज के उपास्य पूजनीय और स्नेह-भाजन सनातन धर्मानुरागी पुरुषो को परम आनन्द होगा।[1]

'सुदशन की नीति और उसे साम्प्रदायिकता मे दूर रखने के उद्देश्य से मिश्रजी की उद्घोषणा कितनी स्वाभाविक है—"हम यह भी सूचित करते हैं कि 'सुदशन हिन्दू पत्र है। यह सनातन धम को अपना प्राण समझता है। साथ ही व्यक्तिविशेष और सम्प्रदाय विशेष का इसे दुराग्रह नहीं है। वरन् सभी वैदिक सम्प्रदाय और आचाय महापुरुषो को मान्य और धन्य समझता है। कभी कभी 'सुदशन मे वेद विरोधी सम्प्रदाय और मतो का इतिहास और सिद्धाँत निरूपण भी हुआ करेगा जिससे कितत्तक्ष विषय मे हमारे धर्मोपदेशक परिपक्व होगे।'[2]

1 'सुदशन', वर्ष 1, अक 1, पृष्ठ 2
2 वही, पृष्ठ 1

इस सदभ मे अपनी सम सामयिक परिस्थितियो के मध्य 'सुदशन' के प्रकाशन के उद्देश्य सम्बन्धी घोषणा मिश्रजी इन शब्दो मे करते है—"यदि कोई पत्र यह कहे कि हमारा उद्देश्य केवल मातृभाषा की उन्नति करना है, तो हो सकता है। यदि कोई इस कलिकाल मे यह कह बैठे कि हमारा केवल समाज सुधार व राजनैतिक उद्देश्य है तो वह भी हो सकता है। परन्तु कोई इस कलिकाल मे यह कह बैठे कि हमारा वह उद्देश्य है जो सुदशनधारी भक्तभयहारी श्रीकृष्णदव का है, जिसके अन्तगत ब्रह्माण्ड भर के समस्त सदुद्देश्य भरे पडे हैं तो लोग उसे उन्मत्त वा ग्रहग्रस्त नही कहेगे तो क्या कहेगे ? क्योकि छोटे मुह बडी बात शोभा नही देती। इस समय 'सुदशन' के पक्ष मे भी वही बात है जो कुछ इसका उद्देश्य है या किया चाहता है, वह इतना गुरुतर है कि जिसके सम्बन्ध मे यहा चुप रहना ही अच्छा है और यू तो विचारशील पुरुष इसके भाव मात्र से इसके भावी कायक्रम का अनुमान भी कर सकते है और अनुबन्ध चतुष्टय को भी जान सकते हैं कुछ दिनो मे आप ही लोग कह देंगे कि हिन्दी भाषा और सनातन धर्म के प्रचार मे 'सुदशन' ने अपूव काय कर दिखाया।"[1]

"और मिश्रजी ने अपने कथन को चरिताथ भी कर दिखाया 'सुदशन' ने आयु पायी 2 वष 4 मास की, पर नीव डाली अगामी दो सौ वष की . प्रत्येक अक विशिष्ट और पठनीय ही नही, मिश्र जी की सम्पादन क्षमता, साहित्यिक जागरूकता, पाण्डित्य और निर्भीकता का प्रमाण था। आज यह 'सुदशन' किसे याद है ?"[2] अम्बिका प्रसाद वाजपेयी के शब्दो मे सुदशन के बाद उनके अधिक लेख वैश्योपकारक' मे निकलते थे। . उनके लेखो का लोगो पर प्रभाव पडता था और ये बडे चाव से खोज-खोज कर पढे जाते थे।[3] वस्तुत 'सुदशन' 'सरस्वती' की टक्कर का पत्र था। इस युग के पत्रकार का जीवन एक तपस्वी ऋषि का जीवन था। उसे अथ से इति तक सब काय करने पडते थे— सन्ध्या को ग्राहक ढूढने निकलना पडता था, उ हे सामग्री सुनानी पडती उनमे साहित्य के प्रति रुचि जाग्रत करनी पडती तब कही जाकर पत्र का प्रकाशन नियमित हो पाता था। वस्तुत पत्रकार को लोहे के चने चबाने पडते थे। इस पर भी अधिकाँश पत्र अल्प काल तक ही जीवनयापन कर पाते थे। 'हिन्दी प्रदीप' पच्चीस वर्षो तक मातृभाषा की सेवा करने पर भी अपना प्रेस न जुटा सका था। सुदशन' के स्थगित होने का कारण अथ सकट होते हुए भी पाठकाभाव नही था। वरन् प० माधवप्रसाद मिश्र के पास समय का अभाव मूल कारण था क्योकि उनकी रुचि धार्मिक और राजनैतिक कार्यों के प्रति अधिक थी।"[4]

यह तथ्य निर्विवाद सत्य है कि मिश्रजी के सम्पादन कौशल और प्रभावशाली व्यक्तित्व के बल पर 'सुदशन ने थोडे ही समय मे अभूतपूर्व ख्याति और प्रतिष्ठा प्राप्त

---

1 'सुदशन के प्रथम अक का सम्पादकीय, पृष्ठ 2-3
2 'धमयुग' अप्रैल 1972, प्रो० कल्याणमल लोढा, पृष्ठ 32
3 'विशाल भारत, 12/4
4 माधवमिश्र निबन्धमाला, जीवन दृष्टि खण्ड, पृष्ठ 13

कर ली थी। 'सुदशन' पत्र के परिप्रेक्ष्य मे प० माधवप्रसाद मिश्र की सम्पादन-कला का मूल्यांकन करते हुए आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने लिखा है—"इसके सम्पादनकाल मे इन्होने साहित्य सम्बन्धी बहुत से लेख, समीक्षाएँ और निबन्ध लिखे। जोश मे आने पर ये बडे शक्तिशाली लेख लिखते थे।"[1] इस प्रसग मे डा० रामचन्द्र तिवारी के शब्द भी द्रष्टव्य हैं—" 'सुदशन' की लेख प्रणाली को हिन्दी के धुरधर लेखको और विद्वानो ने प्रशसा के योग्य ठहराया है। किन्तु डा० तिवारी एक भ्रमात्मक वाक्य भी लिख गये हैं कि 'सन् 1900 मे काशी के देवकीनदन खत्री ने आपको 'सुदशन' का सम्पादक नियुक्त किया।'[2] इस सम्बन्ध मे वाजपेयी जी के मत के सदभ मे लिखा जा चुका है। मिश्र जी वेतनभोगी सम्पादक नही थे। मिश्रजी की भाषा शैली के विषय मे प० कृपाशकर शुक्ल ने लिखा है—"ये सुदशन' के सम्पादक थे उर्दू का आश्रय न ग्रहण कर स्वतत्र ढग से उस चमत्कृत शैली की स्थापना करने वाले थे जिसका चमत्कार पाठको की केवल छिछली मनोवृत्तियो को तुष्ट नही करता किन्तु उनके अन्तस्तल निहित भावधाराओ का स्पश कर उनमे एक आदोलन उत्पन्न कर देता है।"[3]

एक सहृदय सम्पादक के नाते मिश्र जी अपने पाठको की भावनाओं का पूण आदर करते थे। अक के विलम्ब से प्रकाशित होने अथवा किसी सामग्री के अक विशेष मे प्रकाशित न होने पर वे प्राय लिखते—' काशी मे प्लेग के कारण अन्यत्र जाना पडा, अत विलम्ब हुआ—आशा है कि 'सुदशन' के उदारमना विज्ञ पाठक उन्हे सुधार कर पढेंगे और दैवी आपत्तियो के कारण जो विलम्ब हुआ उसे क्षमा करेगे। जो लोग 'सुदशन' के यथाथ गुण दोष की समालोचना कर त्रुटियाँ दिखला, हमे सूचित करेगे हम उन महाशयो के बहुत कृतज्ञ होगे तथा हमारे पास इस अवसर पर 'सुदशन' मे समालोचनाथ बहुत सी तुस्तके और परिवतन के लिए समाचार पत्र कार्यालय मे आये जिनकी न तो अद्यावधि प्राप्ति स्वीकार हुई और न बदले मे अपना पत्र ही भेज सके। हम उन उदारमना सहयोगियो के अत्य त कृतज्ञ हैं जो अब तक हमारा पत्र न पाने पर भी अपना परामश बराबर भेजते जाते है। वास्तव मे ऐसे ही महाशय देश की यथाथ शोभा के कारण हैं।"[4]

अभिप्राय यह है कि प० माधवप्रसाद मिश्र को अहमन्यता छू तक नही गयी थी। वे प्रत्येक विद्वान् तथा सहयोगी का सुझाव एव सहयोग प्राप्त करने के लिए तत्पर रहते थे। एक प्रबुद्ध सम्पादक का दायित्व निर्वाह करते हुए वे पुस्तको की समीक्षा करते समय वरिष्ठ कनिष्ठ, अपना पराया, हानि लाभ और भय सकोच का सवथा त्यागकर देते थे। वे किसी के प्रभाव मे आकर अपना मत बदलने वाले व्यक्ति न थे। जो कुछ

1 हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ 441
2 हिन्दी साहित्यकोश, भाग 2, पृष्ठ 415
3 आधुनिक हिन्दी साहित्य, पृष्ठ 163
4 'सुदशन', वष 2, अक 3, पृष्ठ 23

वह लिखते थे वह तकसगत और सवग्राह्य होता था। 'सुदर्शन' मे प्रकाशित सामग्री मिश्र जी की सम्पादन कुशलता, विषयवैविध्य और विषयानुकूल शैली का प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन्ही विशेषताओ के कारण प० माधवप्रसाद मिश्र और 'सुदर्शन' ने थोडे ही समय मे अपार ख्याति अर्जित कर ली थी।

इस अभूतपूव सफलता और ख्यति के बावजूद 'सुदशन' और लोकप्रिय सम्पादक मिश्र जी के व्यावसायिक निंदक और छिद्रान्वेषियो की कमी न थी। इस सदभ मे 'सुदशन' के अतिम अक मे प्रकाशित वक्तव्य द्रष्टव्य है—'जिन पत्रो को 'सुदशन' के उत्तम विचारो की प्रशसा में दो शब्द कहने का अवसर नही मिला, आज वे भी अपने जी की उमग निकाल रहे हैं। एक बात और भी विलक्षण है कि प्रशसा के समय हमारे सहयोगी केवल लेखो की प्रशसा किया करते थे पर आजकल लेख की समालोचना न कर हमारी निन्दा करते हैं। कोई कहता है कि हम बनारस के गदे उपन्यासो के पक्ष-पाती हो गये हैं।[1] कोई कहता है कि हम मित्रता का निर्वाह करना नही जानते और कोई कहता है कि हम हिन्दुओ को गाली दिला रहे हैं।"[2]

उक्त उदाहरण हमारी सकीण मनोवृत्ति का ज्वलन्त प्रमाण है। जिस व्यक्ति ने जीवनपयन्त अपने स्वास्थ्य, परिवार तथा वैयक्तिक लाभ हानि की चिन्ता न करते हुए स्वदेश प्रेम, समाज, भाषा तथा साहित्य के प्रति पूण निष्ठा का परिचय दिया, उस पर ऐसे आरोप लगाये गये जिन लोगो को मिश्रजी ने स्वाथ के गत मे गिरते तथा पथ भ्रष्ट होते देखा और उन्हे अपनत्व की भावना से प्रेरित होकर सचेष्ट करते हुए सही मार्ग दशन दिया। इससे मिश्र जी का मन चीत्कार कर उठा और अतिम अक मे 'हे नारायण देव! गहो कर बेगि सुदशन' कविता-पक्ति द्वारा अपनी अतव्यथा को व्यक्त करने पर विवश हो गये

दो वष और चार मास की अवधि मे प्रकाश्य 28 अको के स्थान पर 'सुदर्शन' के 24 अक प्रकाशित हुए। इन 24 अको मे प्रकाशित सामग्री का अवलोकन करने से मिश्र जी की व्यापक, बहुमुखी तथा समाहार दृष्टि का समुचित प्रमाण मिल जाता है। इन 24 अको की रूपरेखा निम्न है—प्रथम वष मे 12 अक प्रकाशित हुए। आठवाँ अक विलम्ब से प्रकाशित हुआ, इस विलम्ब के लिए सम्पादकीय मे समालोचना के स्तम्भ मे कारण सहित खेद प्रकट किया। दूसरे वष 'सुदशन' के प्रकाशन मे पर्याप्त अनियमितता रही। अक 6, 7 और 8 तथा 9, 10 और 11 एक साथ प्रकाशित हुए। इस प्रकार इस वष 1901 मे 'सुदशन' के केवल 8 अक प्रकाशित हुए। तीसरे वर्ष 4 अक नियमित रूप से प्रकाशित हुए अधिक विवरण के लिए 'द्विवेदी युगीन गद्य-साहित्य के परिप्रेक्ष्य मे प० माधवप्रसाद मिश्र के गद्य साहित्य का अध्ययन,' देखिए

---

1 चन्द्रकाता आदि के सन्दभ मे भारत मित्र' तथा 'सरस्वती' आदि
2 व्याख्यान वाचस्पति प० दीनदयालु शर्मा के अनुयायियो का आरोप
3 'सुदशन' 3/4 पृष्ठ 37

'सुदशन' के अतिरिक्त मिश्रजी ने कुछ समय तक अनाम 'वैश्योपकारक का सम्पादन भी किया। इसका प्रकाशन सन् 1904 मे आरभ हुआ। इसके सम्पादक श्री शिवचन्द्र भरतिया थे और बाबू रामलाल नेमाणी 59, काटन स्ट्रीट, कलकत्ता स्थित राम प्रेस से प्रकाशित करते थे। इस सम्बन्ध मे डा० कृष्ण बिहारी ने लिखा है—'' 'वैश्योपकारक' के चौथे अक से उसके प्रकाशक नेमाणी और सम्पादक भरतिया जी मे मतभेद हो गया और आगे उनका निर्वाह होना असम्भव हो गया। अन्त मे सेठ रूढमल जी गोयनका और भरतिया जी के विशेष अनुरोध पर प० माधवप्रसाद मिश्र ने 'वैश्योपकारक' का सम्पादन भार सम्भाल लिया और यह सम्बन्ध लगभग पौने दो वष तक चला मिश्र जी के सम्पादनकाल मे इस पत्रिका का स्तर बहुत ऊँचा उठा। अपनी सशक्त लेखनी और गत्वर शैली द्वारा मिश्रजी ने इस पत्रिका को बहुचर्चा का विषय बना दिया था।''[1]

'वैश्योपकारक, मे प्रकाशित मिश्रजी की रचनाओ की तालिका निम्न है—

(1) जापानी मारवाडी (पत्रात्मक शैली की लम्बी कहानी), वष 1, अक 7, 8, 9 तथा 11वे मे।

(2) खुली चिट्ठी—वष 1/12 मे, दया का फल 1/12 मे, लडकी की बहादुरी वष 2/4 मे प्रकाशित हुई। इनके अतिरिक्त बाबू मोतीलाल जी बाघला, बाबू गोपाल चन्द्र जी, सेठ गुरु सहायमल जी तथा सेठ रामदयाल नेवटिया आदि की जीवनिया भी लिखी। तथा बडा बाजार, बडे बाजार की सभाएँ, पिंजरापोल, खेती करना बुरा नही, क्या वैश्य को आय नही कह सकते ?, दान की दुदशा, विद्यालय का चन्दा, विजया-दशमी, श्रावणी के त्यौहार और होली का त्यौहार आदि विचारोत्तेजक लेख भी इसी पत्र मे प्रकाशित हुए। इसके साथ ही मिश्र जी ने सम सामयिक विषयो पर अनेक महत्त्व-पूण टिप्पणिया भी की जिनमे से एक यहाँ उद्धृत है—''सहयोगियो ने हमारे प्रथम अक के पहुँचते ही 'वैश्योपकारक' की समालोचना कर सौभ्रात्रय का परिचय दिया। कृतज्ञता और साधुवाद! 'कनक सुन्दर' नाम के रूपक को किसी ने उपन्यास कहा है, किसी ने नाटक। पर यह न नाटक है और न उपन्यास। यह एक रूपक है। इसलिए उसका आरम्भ किया है दो कल्पित स्त्री पात्रो द्वारा उन बुराइयो का समय समय पर प्रकाश किया जाए जिससे मारवाडियो को क्षति की सम्भावना हो। हा 'कनक सुन्दर' नाम का एक उपन्यास दूसरा है जो हमारे यहाँ पुस्तकाकार छप चुका है।''[2]

सम्पादक के नाते उनके पास समीक्षाथ अनेक पुस्तकें आती थी जिन पर उन्होने सामयिकता के साथ अपनी लोकमगल विधायक दृष्टि से सहज समालोचना की है। इन समीक्षात्मक लघु लेखो तथा टिप्पणियो का सकलन भी अपेक्षित है जिससे उस समय की पत्रकारिता के साथ साहित्यिक गतिविधि का ज्ञान भी मिल सकता है। उनकी इन

1 हिन्दी पत्रकारिता, पृष्ठ 259
2 'वैश्योपकारक', 1/2, पृष्ठ 43

अनेक समीक्षाओ मे से कतिपय की तालिका यहा प्रस्तुत है—अवतार मीमासा, ससार चक्र, लवकुश चरित्र, गौगी दिगम्बर प्रहसन, श्रीतसवस्व, तारा, पातजल दशन, जासूस, स्वपुरुषाथ राजतरगिणी, प्रभास तथा मोहिनी आदि। इनमे से 'राजतरगिणी' सम्बन्धित समीक्षा का एक अश यहा उद्धृत है—''अनुवादक प० उदयप्रकाश देव जी के पुत्र प० न ददेव किशोर शर्मा। इस दुस्साहस मे अनुवादक को परिश्रम के अनुरूप उत्साह मिलेगा कि नही, इसमे सन्देह है, ग्रन्थ को लिखकर वे लाभवान होगे कि नही, यह भी चिन्तयितत्व विषय है। किन्तु गुणग्राही समाज मे इस काम से यशस्वी और अमर होगे इसमे सन्देह नही। ग्रन्थ को देखने से अनुवादक की सस्कृत और हिन्दी भाषा मे असाधारण क्षमता और बहुदर्शिता का परिचय मिलता है। दु ख यही है कि अभी यह ग्र थ अपूर्ण है। केवल तीन ही तरगो का अनुवाद हुआ है।'' इस प्रकार की समीक्षा तथा समीक्षात्मक टिप्पणियाँ विवेच्य अवधि मे पत्रकारिता का दपण हैं। इनके परिप्रेक्ष्य मे प० माधवप्रसाद मिश्र के पत्रकार तथा हिन्दी पत्रकारिता मे योगदान महत्त्वपूर्ण होने के साथ विचारणीय है।

6
प० माधव प्रसाद मिश्र का यात्रा-साहित्य

यात्रा साहित्य का आधुनिक युग से पूर्व रूप मुख्यत तीर्थ दर्शन होता था। ब्रज भाषा के यात्रावृत्तो का महत्त्व केवल धार्मिक दृष्टि से है। डा० पद्मसिंह शर्मा 'कमलेश' के मतानुसार उपलब्ध ग्रन्थो मे 'वन यात्रा', गुसाईं जी, 'वन यात्रा' श्रीमती जीवन जी की माँ बल्लभ सम्प्रदायानुयायी, 'वन यात्रा' परिक्रमा, रामसहायदास और 'ब्रज चौरासी कोस यात्रा' लेखक अज्ञात। कृतियाँ महत्त्वपूर्ण है।[1] डा० रामचन्द्र तिवारी यात्रा वृत्तान्त की परम्परा का सूत्रपात भारतेन्दु से मानते हैं और 'सरयूपार की यात्रा' 'मेहरावल की यात्रा' तथा 'लखनऊ की यात्रा' का उदाहरण देते है।[2]

यात्रा साहित्य की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि और प्रेरणा को निम्न अवस्थाओ मे देखा जा सकता है—(क) ऐतिहासिक परिस्थितियाँ, (ख) सामाजिक परिस्थितिया, (ग) यातायात के साधन, (घ) प्रमुख यात्रा मार्ग, और (ङ) यात्रा का उद्देश्य। इन कारणो मे समय समय पर परिवर्तन होते रहे और परिस्थिति तथा उद्देश्य के अनुरूप यात्रा का स्वरूप तथा उसके वाहन बदलते अथवा कहे कि विकसित होते गये। यथा पदातिक यात्रा, पशु वाहन यात्रा तथा मानव-निर्मित वाहन साइकिल से राकेट तक।

यात्रावृत्त के मूल तत्त्व या प्रतिमान

यात्रावत्त साहित्य अन्य विधाओ की तुलना मे आलोचकों को आकर्षित करने मे अभी कुछ पीछे है क्योकि यात्रा साहित्य के काव्य सौन्दय, उसमे निहित लेखक अथवा कवि के कवित्व, उसकी विभिन्न शैलियो का विवेचन, भाषा सौन्दय आदि तत्त्वो को अभी सम्मुख लाना है क्योकि ये रचनाएँ किसी शास्त्रीय पद्धति पर नही की गयी है। इनका उद्देश्य तो सीधे सादे मनोभावो उद्गारो को अभिव्यजित करना मात्र है।[3] और इसी अभिव्यजना तत्त्व की छानबीन करने के लिए, इसके तत्त्वो अथवा प्रतिमानो की स्थापना परम आवश्यक है। डा० ओमप्रकाश सिंघल ने निम्नलिखित प्रतिमानो की

---

1 हिन्दी वाङ्मय बीसवी शती, स० डा० नगेन्द्र, पृष्ठ 382
2 हिन्दी साहित्य का गद्य साहित्य, पृष्ठ 169
3 यात्रा साहित्य का उद्भव और विकास, पृष्ठ 238

स्थापना की है और जो सामान्यत मान्य हैं—स्थानीयता, तथ्यात्मकता, आत्मीयता, वैयक्तिकता, कल्पनाप्रवणता और रोचकता।[1]

मिश्र जी के इन यात्रावृत्तो मे उपयु क्त सभी प्रतिमान विद्यमान है। प्रत्येक का एक-एक उदाहरण यहाँ उद्धृत है—

(क) स्थानीयता मथुरा यात्रावत्त मे, मथुरा का पौराणिक इतिहास लिखते हुए स्थानीयता का वणन इन शब्दो मे किया है—"मथुरा की शोभा, अब भी देखने योग्य है। इतनी बार उजाड होने पर भी इसकी सुन्दरता अतुलनीय है। अब भी यह अर्द्धचन्द्र प्रतीकाशा यमुनातीर शोभिता दशको का चित्त आकर्षित करती है। लम्बाई मे यह काशी जितनी नही है, कुल डेढ मील लम्बी है और सुन्दरता मे बढी-चढी है। उस पार से बहुत सुन्दर दिखायी देती है। रेल मे बैठा हुआ यात्री जब पुल पर से मथुरा जी का दशन करता है, तब इन्द्र की अमरावती का दृश्य उसकी आखो के सामने आ जाता है। चौमासे मे इसकी अधिक शोभा होती है और महीनो मे यमुना का प्रवाह घट जाने से वह बात नही रहती। मथुरा के चार दरवाजे कहे जाते है—वृन्दावन दरवाजा, दीघ दरवाजा, भरतपुर दरवाजा और होली दरवाजा। पहले तीन अब खाली नाम ही नाम हैं किन्तु अन्तिम पत्थर का बहुत उत्तम और दशनीय दरवाजा है। इस पर अनुमानत तीन हजार का घण्टाघर भी है। इस दरवाजे की कुल लागत तेरह हजार सात सौ ग्यारह रुपये है। यही मुख्य प्रवेश द्वार ह। मथुरा की सडके सब सडको से निराली हैं। पत्थर के अच्छे चौको (पटिया) से पाटी हुई हैं। अच्छे मकान और मन्दिरो की नक्काशी दशनीय है। . यहाँ के बराबर धूत बन्दर भी अन्यत्र दुलभ होगे। हलवाई उनके भय से मिठाई सन्दूक मे रखते है।'[2]

(ख) तथ्यात्मकता शिमला सन् 1814 तक परगना था। यह महाराजा पटियाला और कोथल (जुलगा) के राणा की साझी जमीदारी मे था। सन् 1814 मे नेपाली वीर सेनापति अमरसिंह थापा की वीरता के कारण गोरखो ने जब सब पहाडी राज्यो पर आधिपत्य जमा लिया उस समय अग्रेजो ने देशीय राजाओ की सहायता से गोरखो को यहाँ से खदेडा। यह परगना पुन अपने जमीदारो के अधीन हो गया और अग्रेजो का इस स्थान से यही प्रथम सम्बन्ध हुआ। सन् 1819 मे लेफ्टीनेट रास ने यहाँ आकर लकडी और मिट्टी का एक मकान बनवाया। सन् 1822 मे लेफ्टीनेट केनेडी ने एक पक्का स्थान बनवाया। यह यहाँ पर पहला पक्का मकान था। तत्पश्चात् अस्वस्थ अथवा स्वास्थ्य लाभ करने के विचार से दोनो जमीदारो की आज्ञा लेकर गौराग महाप्रभुओ ने स्थान बनवाये और वे आकर रहने लगे। सन् 1827 मे गवनर आमहर्स्ट ने भरतपुर के युद्धोपरात ग्रीष्म ऋतु के कई महीने यहाँ व्यतीत किये और शिमला का भाग्योदय हुआ। सन् 1830 मे केनेडी साहब ने अपने अधिकारियो की मत्रणानुसार

---

1 समकालीन साहित्य यात्रावृत्त के प्रतिमान, पृष्ठ 167
2 माधवमिश्र निबन्धमाला, यात्रा खण्ड, पृष्ठ 35-36

दोनो जमीदारो को प्रतिकार स्वरूप अन्य स्थान देकर शिमला का रूप सवारा। शिमला के सिमाने मे छोटे छोटे सोलह गाव थे। उनमे से बारह कोथल के राणा के थे जिनकी वार्षिक आय नौ सौ सैंतीस रुपये थी। और चार पाच गाव महाराजा पटियाला के थे जिन्हे क्रमश एक हजार दो सौ नवासी रुपये वार्षिक आय का परगना रायेन तथा दो सौ पैंतालीस रुपये वार्षिक आय का बरोली परगना का कुछ अश दिया गया।[1]

(ग) **आत्मीयता** जो हो मै वेदान्तगढ मे ठहरा और दुर्गाधिपति की कृपा से किसी प्रकार का कष्ट भी नही हुआ। विशेषत मै उस क्लेश से बचा जो कभी कभी थड क्लास के यात्रियो को यहाँ भोगना पडता है। पुस्तको द्वारा ही नही, यू भी यहाँ त्रिलोकी दिखायी देती है। एक कालावच्छेदन स्वग नरक, पाताल सब दृष्टिगोचर होते है किन्तु अदृष्ट बल से अबकी मैने केवल स्वग सुख लूटा, न रात रहा और न मच्छरो से मुलाकात हुई, सफाई भी ऐसी थी कि मानो म्यूनिसपैलिटी के अफसरो की अवाई का समाचार पा पहले ही से सब ठीक ठाक कर रखा था।[2]

(घ) **वैयक्तिकता** जैसे यहाँ के पुरुष सुन्दर, बलिष्ठ और मधुरभाषी और तेजस्वी हैं, वैसे ही विधाता की असाधारण अनुकम्पा से स्त्रिया भी तद्रूप ही हैं। किन्तु स्यापे की सत्यानाशी रीति के कारण बहुधा शोकग्रस्त रहती हैं और एक त्रुटि उनमे यही है कि उनका वेश पुरुषो के समान रुचिकर नही।[3]

(ड) **कल्पनाप्रवणता** "सुतरा इन परिखाओ मे जल भरने के लिए जलदुग किसी तरह का कौशल था, कुछ विषय मे कुछ सन्देह नही। सम्भव है कि नगरी के चारो ओर चार द्वार थे। चारो का नाम भी अलग अलग रखा गया होगा किन्तु हमे एक द्वार के सिवाय और किसी द्वार का नाम नही मिलता। नगरी के पश्चिम ओर जो द्वार था उसका नाम था 'वैजन्त द्वार'। शत्रुघ्न सहित राजकुमार भरत जब मातुलालय गिरि ब्रजनगर से अयोध्या आये थे, तब इसी द्वार से प्रविष्ट हुए थे।"[4]

(च) **रोचकता** यह गुण प्रत्येक कथात्मक विधा के लिए अनिवाय है। मिश्र जी ने अपने यात्रावृत्तो मे इस गुण की रक्षा तथा सवद्धना के लिए पौराणिक तथा ऐतिहासिक घटनाओ का सर्वाधिक आश्रय लिया है। पौराणिक तथ्यो को श्लोक तथा सूत्र सहित उद्धृत करते हुए उन्हे अनेक छोटे छोटे शीषक-उपशीषको मे विभाजित किया है। यात्रा के मध्य, मार्गों और घटनाओ का यथास्थिति मार्मिक एव व्यग्यात्मक चित्रण प्रत्यक यात्रावृत्त मे उपलब्ध है। 'शिमला यात्रा' के मध्य प्लेट के प्रभाव का और 'होशियारपुर यात्रा' के अन्तगत दिल्ली शहर मे होली के पूर्व रूप का वर्णन रोचकता का सहज प्रमाण है।

1, माधवमिश्र निबन्धमाला, यात्रा खण्ड, पृष्ठ 86-88
2 वही, होशियारपुर की यात्रा, पृष्ठ 101
3 वही, अमृतसर की यात्रा, पृष्ठ 117
4 वही अयोध्या यात्रा पृष्ठ 60

उपर्युक्त प्रतिमानो के उदाहरणो के अतिरिक्त मिश्रजी निजी विशेषताओ का प्रयोग भी अपने यात्रा वृत्तो मे करते थे। मिश्रजी उदार धार्मिक वृत्ति के पत्रकार थे। उनमे सुधार की भावना प्रबल थी। उनका सुधारक मन अव्यवस्था के प्रति पूणरूपेण जागत रहा था जिसके परिणामस्वरूप उन्होने अनेक तीथ स्थानो की अव्यवस्था की भत्सना की है।[1] मिश्रजी ने अधिकाश यात्राएँ रेल माग से की। रेल यात्रा के 'प्रसाद' और स्वरूप का वणन 'पुरी यात्रा' के सन्दभ मे द्रष्टव्य है—"कल रात के ग्यारह बजे कलकत्ते से सवार होकर आज दिन मे 10 30 बजे पुरी पहुँचे। चढते समय भीड के कारण स्टेशन पर इतनी अधाधुन्ध मची थी कि हमारे साथियो को अपना असबाव सम्भालने तक की फुरसत नही मिली। पहले मैंने समझा था कि इन आदमियो मे कदाचित् मेरा ही असबाव सबसे अधिक होगा किन्तु स्टेशन पर आने से वह भ्रम जाता रहा। हमारे सभी साथियो के पास असबाव आवश्यकता से अधिक था और वे तीथयात्रियो की तरह नही, गाव बसाने वालो की तरह जा रहे थे।"[2]

अन्तत उपयुक्त उदाहरणो के परिप्रेक्ष्य मे यह तथ्य निर्विवाद रूप से स्पष्ट हो जाता है कि मिश्रजी की प्रतिभा कालजयी थी और दूरदर्शिता से परिपूण थी। अर्द्धशती पूर्व आपने जिस विधा पर भी लेखनी उठायी और उनमे जिन लक्षणो को चित्रित किया कालान्तर मे वही लक्षण उस विधा के मापदण्ड बने। शास्त्रीय सिद्धान्तानुसार भी लक्ष्य और लक्षण ग्रन्थ का पूर्वापर सम्बन्ध होता है किन्तु सखेद यह कहना पडता है कि इस दिशा मे मिश्रजी के व्यक्तित्व और कृतित्व को साधना के अनुरूप स्थान नही मिला और न ही उनका मूल्याकन हुआ।

1 'श्री राघवेन्द्र', वष 3, अक 6, पृष्ठ 8-9
2 वही, 6/7, द्वितीय पत्र।

7

पं० माधव प्रसाद मिश्र : कवि और कविताएँ

प० माधवप्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व का विवेचन करते हुए लिखा जा चुका है कि बाल्यकाल से ही उनमे कवित्व शक्ति के लक्षण प्रकट होने लगे थे। मनोविज्ञान और साहित्य साधको के सिद्धान्त और उदाहरणो मे भी स्पष्ट है कि भावना का प्राबल्य, उद्वेग तथा सृजन की अभिव्यक्ति स्वभावत कविता कामिनी के रूप मे ही प्रस्फुटित होती है। कालान्तर मे परिवेश और अपेक्षा के अनुसार भावावेगा की प्रवाह सलिला विशेष देशोन्मुख हो जाती है। धार्मिक वातावरण और सस्कारो मे पले मिश्रजी की प्रारम्भिक रचनाएँ प्राथना तथा धर्म सभाओ मे, जन समूह को एकत्रित करने, उन्हे शान्त रखने के लिए, गाये जाने वाले भजनो की कोटि मे आती है। शनै शनै वय के साथ मिश्रजी का कवि गद्योन्मुख हो गया किन्तु समय समय पर कविता भी रचता रहा। किशोरावस्था रचित ग्राम्य गीत कालान्तर मे लोक साहित्य की भागीरथी मे विलीन हो गये। किन्तु 'वेदभगवान' जो भिवानी सस्कृत पाठशाला मे नियमित रूप से बोली जाती थी, तथा स्वामी रामतीथ के असमय सन्यास लेने पर क्षुब्ध मन से लिखी 'युवा सन्यासी' और 'करजन की बिदाई' आदि कविताएँ बहुत चर्चित रही। आचाय बनारसीदास चतुर्वेदी ने 'विशाल भारत' के जुलाई अक (सन् 1933) मे 'साहित्यसेवी और साहित्य चर्चा' के अन्तगत मिश्रजी की अनेक कविताओ का सकेत दिया है। 'शशधर', 'तिब्बत के प्रति भारत', 'षोडषपदी काव्यमाला', 'जापान के प्रति भारत भूमि', हिन्दी भाषा', 'हा प्रभु' 'भारत भूमि वदना', ईश्वर प्राथना', 'बडा आदमी किस को कहते है', 'बाल गगाधर तिलक' तथा 'टोगो की विजय मेरी' आदि रचनाओ का उल्लेख करते हुए 'बडा आदमी किसे कहते हैं', 'युवा सन्यासी', 'बाल गगाधर तिलक' तथा 'टोगो की विजय मेरी' रचनाएँ प्रकाशित की और अन्त मे लिखा "यदि मिश्रजी की कविताओ का सग्रह प्रकाशित हो जाये तो हमारे कितने ही काव्य ममज्ञ पाठको को यह देखकर आश्चय होगा कि मिश्रजी की रचनाओ मे देशभक्ति तथा स्वातत्र्य प्रेम का कितना जबरदस्त पुट था। दम्भ तथा दुराचार के वे कितने प्रबल विरोधी थे। मिश्रजी की तरह के साहित्य सेवी आज हमारे यहाँ दुलभ हैं।"[1]

---

1 विशाल भारत, जुलाई 1933, पृष्ठ 105

'मारवाड़ी भजन सागर'[1] जिस पर आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी तथा प० राहुल साकृत्यायन की सम्मतिया भी हैं, के अन्तर्गत मिश्रजी कृत राग रागिनीबद्ध रचनाएँ सकलित हैं जिन्हे पम्परागत भारतीय दशन, तुलसी और सूर की भक्ति भावना और साहित्य साधना की परम्परा के अन्तगत देखा तथा परखा जा सकता है। यथा—

(1) राग सोरठ

झूलत यह अति अनुपम जोरी।
नन्द नन्दन ब्रजराज लाल सग श्री वृषभानु किशोरी ।। 1 ।।
वृन्दा विपिन कदम्ब डार पर सुभग रगीली डोरी।
कैसो झूलो बधो मनोहर, शोभा रही न थोरी ।। 2 ।।
बरसत मेघ चमक रही चपला, डरत भानुजा गोरी।
चूनर भीजत श्याम न छाडत, करत खूब झकझोरी ।। 3 ।।
प्रकृति पुरुष की लीला, अद्भुत, समझ सके नहिं घोरी।
राधा माधव चरण जुगल मे कब लगि है मति मोरी ।। 4 ।।

(2) राग जगला

यह दोऊ लाल लाडिली बन मे, झूलत है गल बाह मुदित है।
मन्द मन्द मुसकात जात, सकुचावत कछु कछु मन मे ।। 1 ।।
खुले केस झोटन के कारन धरन पवन फटकारत।
चन्दमुखी लगि अग श्याम के, शोभित जस दामिन घन मे ।। 2 ।।
परम फुवार पवन पुरवाई, द्रुम बेलिन की छवि अति छाई।
बोल मोर पपीहा कूकत, उमग बढावत तन मे ।। 3 ।।
सघन कुज यमुना के तट की, सुरग चूनरी मोर मुकुट की।
शोभा मिश्र देख रति मन्मथ, लज्जित निज यौवन मे ।। 4 ।।

इसी प्रकार राग होरी मे 'खेलत राधा माधव होरी' तथा लावणी मे 'जगदम्ब शरण माई। तब हो पूजा सुखाई ।। टेक ।। सब भाति देकि ! सुखदायक ! हो तेरा ज्ञान सहायक। जितने जग मे नर नायक, होवे सब तेरे पायक। महिमा नित बढे सवाई'। भक्तिपरक रचनाओ मे परम्परागत काव्यागो की झलक स्पष्ट देखी जा सकती है। उपमा, उत्प्रेक्षा, अनुप्रास आदि अलकारो का समुचित प्रयोग मिश्रजी के कवि-कुशलता का परिचायक है। इस सन्दर्भ मे 'सुदर्शन', 1901 के जनवरी अक की दीघ रचना भी द्रष्टव्य है—

जय जय जय जगदीश, दीन जन के रखवारे।
जय जय करुणासिन्धु, परम प्रिय पिता हमारे।

---

1 सकलनकर्ता रघुनाथ सिंहानिया, प्रकाशक राजस्थान रिसच सोसाइटी कलकत्ता प्रकरण, सस्करण स० 1990

जय अनाथ के नाथ, हाथ गहि राखन हारे।
जय निधन के धन, निबल के बल अति प्यारे।
जय जयति 'सुदशन चक्रधर, सकल भक्त भ्व भय हरण।
जय दीन दयाल दयानिधे रमारमण, अशरण शरण।

तव महिमा हे महामहिम नहि जाहि बखानी।
शेष शारदा आदि थके, सुर मुनि ऋषि ज्ञानी।।
नेति नेति कह वेद भेद कछु जानत जान्यो।
अगम, अगोचर, अजर, अकथ सब विधि सो मान्यो।।
हम मतिमन्द गवार तदपि दुस्साहस करके।
कहन चहत कछु अहा! चपल रसना यह फरके।।

ज्यो नृप कीरति कुशल बन्दिजन के आछत नित।
अथहीन, बेमेल, कीर रव, सुनत मुदित चित।।
वेद विदित गन्धर्व गेय, त्यो विनय हमारी।
यह निहचै जिय माहि लागहिं तुम कह प्यारी।।
तासो दयानिधान! बात निज जिय की भाखे।
जदपि तिहारे जोग पास कछु पुजी न राखे।।

यह मुख कब यहि जोग, लेभ जो नाम तिहारो।
हाड, मास, कफ, चाम आदि को बन्यो पिटारो।।
पर निन्दा को धाम अहो, का कहे जुवानी।
यह रसना रसहीन, कुवच विष सो लपटानी।।
महा अपावन बदन कहा, कह 'नाम पवित्तर।
अति रमनीक सुचारु सुधासम सुखद प्रीतिकर।।

हव्य कव्य के हेतु धृष्ट कूकर ज्यो दौरत।
तव गुन वरनन काज चित्तबेमन कह तोरत।
जद्यपि यह धृष्टता महा जो करत कूर मन।
तदपि आपनी ओर हेरियो छमा निकेतन।
जो हमारि करतूत ओर हरि नेक निहारो।
तो पुनि छन भर होम न कहु निरवाह हमारो।

अन्तरजामी आप सकल जानत हो चित की
तब करुणाबल बिना बात एकहु नहि हित की ।।
रोगग्रस्त तन, दरद गेह मन अतिसम चचल ।
घन नाते तब नाम काम सब करहि अमगल ।।
पै तुम करत सगार नित हम सरिस अधीन की ।
पूरत मन की आस त्रास मेटत प्रतिदिन की ।।

———

अनगिनत अवगुन छमा किये, यह बात यथारथ ।
असन, वसन इत्यादि दिये, बहु भोग पदारथ ।।
किए अमित उपकार कहा तक दया सराहे ।
श्रीमुख आशिर्वाद तदपि औरहु कछु चाहे ।।
यह 'नव वर्षारम्भ' होय सब विधि सुखकारी ।
भारत आरत गहे पुनरपि कृपा तिहारी ।।

———

निज भाषा, निज धम हेतु सब तन मन वारो ।
भारतीय भाई अपनो कतव्य विचारो ।।
सुख स्नेह चहु ओर बढे विद्या परकासे ।
रोग सोग सन्ताप सकल भारत के नासे ।।
एडवड सम्राट लहेहि वर विभव बडाई ।
निज जननी की भाति प्रजा की करहि भलाई ।।

———

नाथ 'सुदर्शन' पत्र करे निज नाम जथारथ ।
लह याको उपदेश सुजन जन चलहि सुखद पथ ।।
निज गौरव गये भूलि ताहि यासो पहिचाने ।
अनुज दुराग्रह छोड धम्म पथ को पुन जाने ।।
पराभक्ति अनुरक्त भक्त जन सबको निभय ।
कहहि प्रेम सो देव ! 'सुदर्शन' जयति जयति जय ।।

———

प्रस्तुत कविता मे काव्य सौष्ठव के साथ देश कल्याण और भारतीयता के गौरव रक्षा की भावना प्रखर रूप मे व्यक्त हुई है । ब्रज भाषा का माधुय, अन्तर्भावना की हृदयस्पर्शी अभिव्यक्ति, शब्दचयन आदि मिश्रजी की कवित्व क्षमता के प्रमाण हैं । करुण रस की मार्मिक कविता 'प्रभुदयाल पाण्डे' के निधन पर 'सुदशन' के तीसरे वर्ष के तीसरे अक मे अन्तिम पृष्ठ पर मुद्रित हुई । जिसकी कतिपय पक्तिया यहा उद्धृत हैं—

ऐसे प्लेग पिसाच दया तोहि नक न आई।
मृतवत्सा हिन्दी हू पैं निज चोट लगाई।
हाय मातृभाषा की जो कोई करत भलाई।
बिछुर जात सो वेगि न वय मह हो अधिकाई॥
व्यास वियोग दुख अजहु सालत रह्यो छाती।
आज अचानक बिछुर गयो एक और सघाती॥

प्रभुदयाल वह निज दयालुतर कहा गवाई।
वृद्धा जननिहि तजत तोहि दया न आई।
वेद अग्नि की साखि राखि कर पकरयो जाको।
रह्यो भरोसो उभय लोक मे जाहि विभा को॥

अब अबोध शिशु पिता कहा कह कर अकुलै है।
तब प्यारे उन सबहि आन को धीरज दैहैं॥

इसी कविता मे व्यक्ति के साथ साथ लोकमगल विधायक भावानुप्रेरित विचार से उस समय की हिन्दी-साहित्य की अवस्था पर भी प्रकाश डालते हुए मिश्रजी ने लिखा—

जह प्रतापनारायण ही कोउ मिल्यो नदानी।
चल्यो न 'ब्राह्मण' पत्र उठाई बहुधा हानी॥
जह अम्बिकादत्त व्यास के ग्र थ मनोहर।
ह्वै न सके मुद्रित अरु मुद्रित बिके न सत्वर॥
जह स्नेह बिनु 'हिन्दी दीप' बुझ्यो है चाहत।
जह उदारजन कोउ न निज कतव्य निबाहत॥

हिन्दी सम्पादक दरिद्र कछु पूजिन राखें।
बधिर देस में हाय बात निज जी की भाखें।

प्रस्तुत रचना मे श्लेषालकार के साथ हिन्दी प्रेमी समाज पर व्यग्य की छटा भी दशनीय है। चित्रमयता मिश्रजी की रचनाओ की अपनी विशेषता है। मिश्रजी की अनेक रचनाएँ हैं जिनका एक लघु सस्करण स्वतन्त्र रूप से निकल सकता है। यहाँ विस्तारभय से केवल कतिपय विविध विषयक रचनाएँ अथवा उनके अश ही उदधृत कर सन्तोष करना पड रहा है। मिश्रजी की सामयिक बहुचर्चित रचनाओ मे 'साडी और घाघरा', 'करजन की विदाई' तथा 'प० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी' को लेकर 'भ्रमर' शीषक से लिखी गयी दीघ कविताएँ हैं जिनसे मिश्रजी के कवि रूप का सशक्त और सहज परिचय मिलता है।

8
आलोचक पं० माधव प्रसाद मिश्र

मिश्रजी के ओजस्वी कृतित्व के विवेचन के आधार पर यह निष्कष निकलता है कि उनकी दृष्टि पूर्वाग्रह तथा वैयक्तिक सकीणता के पक से सवथा मुक्त थी। उनकी समीक्षा मे व्यक्ति नही विषय प्रमुख होता था। मिश्रजी के आलोचक स्वरूप और उनके कतिपय आलोचना सम्बन्धी निबन्धो तथा आलोचना विषयक मान्यताओ का विवेचन करने से पूव, आलोचना के स्वरूप पर सक्षिप्त चर्चा करना असमीचीन न होगा। वर्तमान युग मे आलोचना शब्द प्राय साहित्यक समालोचना के अथ मे प्रयुक्त होता है और यह शब्द अग्रेजी के 'लिटरेरी क्रिटिसिज्म' का पर्याय है। अग्रेजी भाषा और साहित्य मे इस शब्द की व्युत्पत्ति ग्रीक शब्द 'क्रिटिकोस' से मानी जाती है जिसका अर्थ विवेचन करना या निणय देना है। यूनानी विचारक प्लेटो आलोचना के आदि गुरु माने जाते है। वे साहित्य मे ही नहीं, वरन साहित्यकार मे भी श्रेष्ठ चरित्र तथा श्रेष्ठ आचरण के साथ सत्यानुसरण का समावेश चाहते थे। यह एक नैतिक दृष्टि की नैतिकतावादी आलोचना थी जिसकी परिधि सीमित थी। इसे प्लेटो के शिष्य अरस्तू ने अधिक व्यापकता प्रदान की। अरस्तू की दृष्टि से वैज्ञानिक सत्य की अपेक्षा सम्भावित सत्य का उद्घाटन करना ही साहित्यकार का दायित्व है। यह एक यथार्थवादी दृष्टि थी। इन गुरु शिष्य की विचारधारा योरोपीय साहित्कारो मे एकाकार हो गयी और योरोपीय समालोचना मे रचना के विषय, सौन्दर्य सिद्धान्त, रचनाकार की जीवनी अर्थात् उसके परिवेश का मूल्यांकन करते हुए उसके गुण दोषो तथा अन्त वत्तियो का भी विवेचन किया जाने लगा। व्यक्ति के दृष्टिभेद से आलोचना के अनेक रूप और प्रकार प्रचलित रहे हैं जिनका मूल कारण व्यक्ति का परिवेश तथा दृष्टिकोण है। आलोचना को मूलत दो भागो मे विभाजित किया जा सकता है—(1) सैद्धान्तिक और (2) व्यावहारिक। प्रथम के अन्तगत साहित्य की अनेक विधाओ—कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक आदि के आधारभूत शास्त्रीय सिद्धान्तो का विश्लेषण तथा विवेचन होता है। द्वितीय के अन्तगत किसी साहित्यकार के कृतित्व का युगीन दृष्टि से मूल्यांकन किया जाता है।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से आलोचना शब्द 'लोच्' धातु मे 'आ' उपसर्ग तथा 'अन्' और 'आ' प्रत्यय लगने से निष्पन्न हुआ है। इसका अथ किसी वस्तु या कृति की सम्यक्

व्याख्या, उसका मूल्याकन आदि करना है। साहित्यकोश मे आलोचना की व्याख्या इस प्रकार की गयी है—"आ समन्तात् लोचनम् अवलोकनम् इति आलोचनाम्" ।[1]

आलोचना शब्द की व्युत्पत्ति, स्वरूप और उसके क्षेत्र का विवेचन करते हुए अधिकाँश विद्वानो ने उसे सीमित रूप मे ही देखा है। राजशेखर ने कविकर्म को प्रकाश मे लाना ही प्रतिभा अथवा आलोचक की प्रतिभा माना है। (आज यह काय प्रकाशक अधिक सुगमता और यदि स्वाथसिद्धि होती हो तो सहृदयता से भी करता है।) आज इस विषय पर अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है जिनमे पौर्वत्य और पाश्चात्य एवम् विश्वभर के विद्वानो तथा दार्शनिको के मतो की विविध रूपो मे अपनी अपनी दृष्टि से आलोचना हो चुकी है। (अधिक) गिनाने वाले व्यक्ति को आलोचक की सज्ञा देते है। अत इस कोटि के अन्तगत प० माधव प्रसाद मिश्रजी की गणना सम्भवत विद्वानो को ग्राह्य न हो। क्योकि जब इनकी सृजनात्मक प्रतिभा का ही मूल्याँकन नही हुआ तो आलोचना विषयक ग्रन्थ का तो उन्होने प्रणयन किया ही नही था। लेकिन मिश्रजी की गणना सवथा आधुनिक आलोचको मे भी नही की जा सकती। क्योकि आधुनिक आलोचना के स्वरूप का विकास उनके बाद हुआ है। वे भारतीय प्राण सत्ता की उस पवित्र भागीरथी के प्रवाह थे जो जीवन को देखती ही नही, उसे प्राण और शोभा भी प्रदान करती है। आलोचना के इतिहास मे आचाय शुक्लोत्तर काल की आलोचना के लिए सम' उपसग लगाकर 'समालोचना' शब्द का इतिहास और धारणा स्थापित की गयी है। जबकि मिश्रजी ने सन् 1902 मे ही इस शब्द का न केवल प्रयोग बल्कि उसका विवेचन करते हुए लिखा है कि "गुण दोष के सम्यक् विचार का नाम समालोचना है। जो सज्जन सद्विचारपूर्वक समालोचना करते हैं वे रत्नपरीक्षक (जौहरी) के समान केवल अपनी उन्नति के सम्पादक ही नही है, वरन उस व्यापार के भी उन्नायक और साधक हैं जिसमे उनकी विवेचना शक्ति का आधिपत्य है। इसी प्रकार जो महाशय राग द्वेष से वा हठ अज्ञान के कारण समालोचना के नाम को कलकित करते हैं वे न केवल अपनी हानि करते है, प्रत्युत उस व्यवसाय की भी जो उनके मनोविनोद का ही नही, आजीवन का भी मूल है।"[2]

इस सक्षिप्त कथन के आधार पर मिश्रजी की आलोचना सम्बन्धी निम्नलिखित मान्यताएँ देखी जा सकती हैं। 'गुण दोष के सम्यक् विचार' कथन एकागी दृष्टि के निषेध तथा व्यापक और 'निज पर' से परे की तटस्थ दृष्टि का सकेत मिलता है।

'सद्विचारपूर्वक' वाक्याँश लोकमगल की भावना का द्योतक है अर्थात् पूर्वाग्रह मुक्त दृष्टि। वरन् उस व्यापार के भी उन्नायक और साधक है जिसमे उनकी विवेचना शक्ति का आधिपत्य है। वाक्याँश से समालोचक के महत्त्व और समाज को प्रेरणा देने वाली शक्ति का सकेत मिलता है। 'राग-द्वेष से वा हठ अज्ञान' कथन से तत्कालीन

1. साहित्यकोश, भाग 1, पृष्ठ 120
2. 'सदशन' उपन्यास और समालोचना, वष 3, अक 2

प्रवत्ति की ओर सकेत किया गया है। क्योकि बाबू श्यामसुन्दरदास ने मिश्रजी के प्रति "जिस व्यक्ति ने विश्वविद्यालय मे पैर भी नही रखा" शब्दो का व्यवहार किया था। 'प्रत्युत उस व्यवसाय की भी जो उनके मनोविनोद का ही नही, आजीवन का भी मूल है" वाक्य मे भावी जीवन और साहित्य निर्माण की रक्षा तथा प्रेरणा का सकेत निहित है। इन विचारो की प्रधानता का कारण पुरातन भारतीय सस्कृति की रक्षा तथा पुरातन साहित्य का विशद् अध्ययन और अनुशीलन था। इससे उनका 'स्व' 'पर' मे एकाकार होकर व्यापक और निर्भीक हो गया था।

मिश्रजी ऐसे साहित्य सृजन को हेय मानते थे जो केवल मनोरजन के लिए लिखा गया हो। वे इस बात को भी बुरा मानते थे कि साहित्य को खिलौना समझकर उसके साथ खेला जाय। वास्तव मे उनकी दृष्टि मे वही साहित्य काम्य था जो स्वस्थ मनोरजन और ज्ञानवद्धन मे सहायक हो। वे साहित्य की प्रत्येक विधा के समुचित विकास के पक्षधर थे। वे किसी भी परिस्थिति मे सत्साहित्य, प्राचीन सभ्यता और सस्कृति के प्रति उपेक्षा दृष्टि को सहन नही कर पाते थे।

यद्यपि मिश्रजी ने स्वतन्त्र रूप से किसी आलोचनात्मक ग्रन्थ की रचना नही की, तथापि 'सुदशन' तथा 'वैश्योपकारक' मे लिखे गये उनके सम्पादकीय लेख तथा समय-समय पर लिखी विविध समीक्षात्मक टिप्पणिया उनके आलोचक रूप की परिचायक हैं। वस्तुत मिश्रजी ने आलोचना को उसके शैशवकाल मे ही ऐसी व्यापक, तटस्थ तथा सन्तुलित दिशा प्रदान की जिसका आगे के युग मे निरन्तर विकास होता चला गया। उनकी आलोचना मे निर्भीकता, सास्कृतिक परम्परा की रक्षा एव लोकमगल की भावना प्रबल और प्रचुर रूप मे देखी जा सकती है।

'सरस्वती' और 'सुदर्शन' का प्रादुर्भाव साथ साथ ही हुआ और सम्पादक के नाते फरवरी 1900 मे उन्हे 'सरस्वती' की प्रति प्राप्त हुई और 'सुदशन' के माच अक मे 'सरस्वती परिचय' शीषक से एक समीक्षात्मक टिप्पणी प्रकाशित की। उसका एक अश यहाँ उद्धृत है—"पत्रिका की मनमोहिनी छटा देखकर जैसे नेत्र शीतल होते हैं, वैसे ही लेखपाठ से हृदय। पत्रिका के सम्पादक महोदय (जो पाँचो काशी के धार्मिक वश सभूत हिन्दू हैं) भगवती सरस्वती को आज रसज्ञ सहयोगियो की सेवा मे खीच लाये है। उनकी अखण्डनीय आशा है कि वे लोग सब प्रकार से अपनी बाहुलता की शीतल छाया मे इस नवीन बालिका को आश्रय देने मे कदापि पराङ्मुख न होगे कि जिसके सम्मुख आज यह नये रग-ढग, नये वेश विन्यास, नये उद्योग, नये उत्साह और नयी मनोमोहिनी छटा से उपस्थित हुई है। किन्तु हमारा हिन्दू मात्र से अनुरोध है कि बालिका के वेश विन्यास पर मोहित हो हाथ मत पसारना, सिर झुकाना। क्योकि ये वीणापाणि का प्रतिरूप है जिसके असम्मान से ब्रह्मदेव का सिर उड गया था, फिर तुम क्या चीज़ हो! आशा है कि हमारे काशी के पच पवित्रात्मा लिखते समय हिन्दू भाव और काशी के परम पवित्र नाम का भी स्मरण रखेंगे।" इस अश से मिश्रजी की भारतीय दशनमूलक, लोकमगलात्मक तथा व्यजनायुक्त पैनी दृष्टि का परिचय भली

भाँति मिल जाता है। केवल शीषक शब्द 'सरस्वती' को केन्द्र बिन्दु बनाकर अपनी भावनाओ की निर्भीक अभिव्यक्ति की है। इसी लेख मे आगे विषयो की चर्चा करते हुए लिखा है कि "भारतेन्दु की प्रशसा की और अपेक्षा भी। सिम्बेलिग शेक्सपियर का मर्मानुवाद कौतूहलपरक। कश्मीर यात्रा एक सरल प्रबन्ध। आशा है लेखक महाशय अपने नये टाइप के शब्दो से 'सरस्वती' की मर्यादा अक्षुण्ण रखेगे। 'अर्जनमित्र' से शीर्षक का बहुत कम सम्बन्ध है। न इसकी कविता की आलोचना है और न इसमे लेखक कुशल है। विश्वकोश के अनुक्रम के पीछे पड प्रथम ग्रासे मक्षिका पात अच्छा नही हुआ फोटोग्राफी काम की चीज है भगवान् विश्वनाथ से प्राथना है 'रम्भरीति रनधा गुणोज्ज्वला चारुवृत्तरुचिरा रसान्विता। रज्जयत्विमलकृतामन स्वामिन प्रणयिनी सरस्वती'।"[1] प्रस्तुत अश मे पत्रिका के शीर्षक ही नही उसके प्रत्येक लेख, विषय तथा शब्द प्रयोग तक के प्रति जागरूकता के दशन होते है। 'सुदशन' के अग्रलेख तथा समय समय पर लिखी अनेक समीक्षात्मक टिप्पणियाँ सारगर्भित होने के साथ साहित्यिक और मीमासक जगत् मे आदर की दृष्टि से देखी और पढी जाती थी। कृति विशेष के सम्बन्ध मे लिखे गये ये लघु लेख आगे चलकर पुस्तक समीक्षा (अग्रेजी मे बुक रिव्यू) और व्यक्तिविशेष के विषय मे लिखे जाने वाली रचनाएँ आलोचना की श्रेणी मे गिनी जाने लगी।

बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ से ही हिन्दी साहित्य मे देश विदेश की रचनाओ का अनुवाद प्रचुर मात्रा मे होने लगा। पत्र पत्रिकाओ को भी इसकी आवश्यकता थी और हिन्दी-साहित्य तथा हिन्दी पाठक के विकास के लिए भी यह काय अपेक्षित था। हिन्दी-साहित्य के इतिहास ग्रन्थो से यह तथ्य आज सर्वमान्य है कि द्विवेदी युग मे मौलिक साहित्य की अपेक्षा अनुवाद कार्य अधिक हुआ। साहित्य की प्राय प्रत्येक विधा—कहानी, नाटक, उपन्यास तथा कविता आदि के साथ अन्य अनेकानेक विषयो का अनुवाद हुआ। इस समय अनुवादित रचना को भी मौलिक रचना के समान ही आदर दिया जाता था। स्वय आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी की अनेक रचनाओ पर अनुवाद का प्रभाव देखा जा सकता है। 'बेकन निबन्धावलि' इसकी प्रत्यक्ष प्रमाण है। प० माधव प्रसाद मिश्र भी अनुवाद अथवा छायानुवाद के विरोधी नही थे, वे भी युग धम तथा समय सापेक्षता एव हिन्दी साहित्य की अपेक्षा को अनुभव करत थे किन्तु उनकी मान्यता थी कि अनुवादक मे मूल लेखक और उसकी कृति के मूलभाव की आत्मा तक पहुँचने की क्षमता होनी चाहिए। इस सन्दभ मे श्रीधर पाठक क अनूदित ग्रन्थो—'उजड ग्राम', 'एकान्तवासी योगी' और 'गुणवत हेमन्त' की समीक्षा के लिए एक ओर आचाय रामचन्द्र शुक्ल जैसे साहित्य-ममज्ञ ने मिश्रजी की मुक्त भाव से सराहना की किन्तु दूसरी ओर मिश्रजी की भारतीयतामूलक, स्वदेशपरक, स्पष्टवादी, तटस्थ आलोचना से आचाय द्विवेदी अप्रसन्न हो गये (और मिश्रजी के देहावसान के पश्चात् तक ही क्या जीवनपर्यन्त

---

1 'सदर्शन' वष 1, अक 3

अप्रसन्न बने रहे क्योकि उन्होने कही भी मिश्रजी तथा उनकी साहित्य साधना के सम्बन्ध मे प्रशसात्मक अथवा मूल्याकनात्मक दो शब्द भी नही लिखे।) क्योकि द्विवेदी जी श्रीधर पाठक के प्रशसक थे और वे नही चाहते थे कि मिश्रजी उनकी कृतियो की तटस्थ और खरी आलोचना करें। द्विवेदी जी की इच्छा थी कि मिश्रजी भी उनकी तरह व्यक्ति सापेक्ष दृष्टिकोण अपनाकर श्रीधर पाठक तथा उनकी अनूदित उक्त रचनाओ की प्रशसा करे।

उक्त प्रकरण से मिश्रजी की स्पष्टवादिता और निर्भीकता का सम्यक् परिचय मिल जाता है। वे बेलाग और दो टूक बात कहने में सकोच नही करते थे जिसका कारण सास्कृतिक चिंतन से अनुप्राणित उनके व्यक्तित्व की ओजस्विता थी। यह सास्कृतिक चिंतन भौतिक तथा अध्यात्मिक पक्ष से समन्वित सामाजिक चिंतन ही ह।

उपयुक्त विवेचन के माध्यम से मिश्रजी के निबन्धकार तथा पत्रकार के रूप मे जागरूक समीक्षक स्वरूप के स्पष्ट दशन होते हैं। निबन्धकार के रूप मे अध्याय 3 मे स्वतन्त्रचर्चा की गयी है। इनके अतिरिक्त मिश्रजी ने गद्य शैली की गल्प-विधा मे भी रुचि ली। 'माधवमिश्र निबन्धमाला' मे सकलित 'कहानी खण्ड' के अन्तर्गत चार रचनाएँ और 'आख्यायिका सप्तक' से मिश्रजी की कहानी कला का प्रत्यक्ष प्रमाण मिलता है। इन कहानियो के आधार पर उन्हे हिन्दी कहानी के जन्मदाताओ मे अग्र स्थान मिलना चाहिए। मिश्रजी कृत 'लडकी की बहादुरी' शिल्प और विषय की दृष्टि से हिन्दी की प्रथम मौलिक कहानी की दावेदार है। इसका स्वतन्त्र विवेचन 'कहानीकार मिश्रजी' शीषक अध्याय मे किया गया है। इस प्रकार स्पष्ट हो जाता है कि मिश्रजी के व्यापक कृतित्व मे साहित्य की अनेक विधाओ—पत्रकारिता निबन्ध, समीक्षा, कहानी तथा यात्रावृत्त का समावेश हो गया है। यात्रा साहित्य का विवेचन भी स्वतन्त्र अध्याय मे किया गया है। उपर्युक्त गद्य शैलियो और विधाओ के अतिरिक्त उन्होने अन्य अनेक विधाओ का भी स्पर्श किया है। यहा उनके 'रिपोर्ताज', 'पत्र' तथा 'नाटक' सम्बन्धी लेखन पर एक दृष्टि डालना अप्रासागिक न होगा।

9
पं० माधव प्रसाद मिश्र के रिपोर्ताज़, पत्र और नाट्य रचनाएँ

प० माधवप्रसाद मिश्र ने 'रिपोर्ताज' भी लिखे। इस तथ्य से अधिकाश विद्वान परिचित न होन के कारण आश्चयचकित हो सकते है। इसका मूल कारण है विगत 40-50 वष की अवधि मे लिखा गया साहित्य अपने प्रणेता के पाश्चात्य प्रेम से प्रभावित है। इसके फलस्वरूप आज हिन्दी साहित्य की प्राय प्रत्येक विधा का जन्म, उसका विकास-क्रम, वतमान स्वरूप और शिल्प तथा शैली को पाश्चात्य देन के रूप से सिद्ध किया जाता है जिसका मूल कारण हमारी वतमान शिक्षा पद्धति का प्रभाव है। प्राय प्रत्येक विधा के लिए अग्रेजी का कोई शब्द खोजा जाता है और उसके पर्याय रूप मे हिन्दी विधा को स्वीकार करने के साथ साथ यह सिद्ध किया जाता है कि अमुक विधा का ज'म भारत से पूव योरोप मे हुआ। वहाँ उस पर पर्याप्त सामग्री उपलब्ध है। वस्तुत यह धारणा बडी भ्रामक और हास्यास्पद है।

'रिपोर्ताज फ्रासीसी भाषा का शब्द है। इसका अग्रजी शब्द 'रिपोट' से बहुत साम्य है। 'रिपोट' शब्द का सामान्य व्यवहार किसी घटना विशेष के विवरण को थाने मे दज कराने तथा किसी समाचार-पत्र मे प्रकाशनाथ विवरण के लिए किया जाता है। हिन्दी मे इसके लिए 'वृत्त-निर्देशन' अथवा 'सूचनिका' शब्द दिये गये है। इसका सम्बन्ध पत्रकारिता से भी माना जाता है। सवाददाता समाचार पत्र के लिए जो रिपोट लिखता है, उसमे साहित्यिकता का होना आवश्यक नही है। इसीलिए दैनिक समाचारो मे प्राय ऐसी अनेक रिपोट पढने मे आती है जिनका प्रभाव स्थायी नही होता। पाठक के लिए उसका कोई विशेष महत्त्व नही होता कि-तु जब किसी घटना विशेष की रिपोट को कलात्मक ढग से साहित्यिक शैली मे प्रस्तुत किया जाता है, तब वह 'रिपोर्ताज' का स्थान ग्रहण कर लेती है। उसके पढने से पाठक के मन पर स्थायी प्रभाव पडता है। कतिपय 'रिपोर्ताज' एकाधिक बार पढने पर भी प्रमाता को आन-द प्रदान करने मे समर्थ नही होते है। अत जहाँ 'रिपोट' मे केवल कटु सत्य का विवरण रहता है, वहाँ 'रिपोर्ताज' मे सत्य के साथ 'शिव' भी विद्यमान रहता है। रिपोर्ताज' लेखक उसे अपनी विशिष्ट शैली के सुन्दर आवरण से आवेष्ठित कर प्रमाता के सम्मुख प्रस्तुत

करता है। 'रिपोर्ताज' एक साहित्यिक विधा है। उसमे साहित्यिकता, भावकता तथा सवेदना का पुट रहना है। उसमे वस्तुगत तथ्य को इस प्रकार कलात्मक एव प्रभावोत्पादक शैली मे प्रस्तुत किया जाता है कि वह प्रमाता को उस विवरण की तथ्यात्मकता के साथ साथ साहित्यिक आनन्द की रसानुभूति भी कराता है।

'रिपोर्ताज' घटनात्मक होने पर भी कथातत्त्व युक्त होता है। इसके रचियता को कथाकार और पत्रकार का दोहरा दायित्व निभाना होता है। इन महत्त्वपूर्ण दायित्वो के प्रति ईमानदार रहने के लिए उसे जन साधारण के जीवन, उसकी गतिविधि, उत्सव, पव, त्यौहार और दैवी प्रकोपो से उत्पन्न परिस्थिति की यथाथ जानकारी के साथ सहानुभूति भी आवश्यक है। लेखक को वस्तुस्थिति का पूण ज्ञान होना चाहिए। उसमे सवेदनानुभूति, कलात्मक अभिरुचि और सूक्ष्म पयवेक्षण शक्ति का होना परमावश्यक है। रिपोर्ताज' मे सरसता, सजीवता ममस्पर्शिता प्रवाह और भाव प्रवणता के गुण होने अनिवाय है। उसमे सीमित परिधि के अन्तगत ही अनक तथ्यो को उदघाटित किया जाना चाहिए। 'रिपोर्ताज घटना अथवा दृश्यप्रधान होता है—व्यक्तिप्रधान नही। व्यक्ति का चरित्र मनोविश्लेषणात्मक शैली द्वारा उदघाटित किया जाना चाहिए। इसके लिए सारगर्भित और अनुकूल शब्द चयन अपेक्षित है। रेखा चित्रकार की अपेक्षा रिपोर्ताज लेखक को अधिक तटस्थ और मानसिक रूप से अधिक जागरूक रहना होता है।

'रिपोर्ताज' के उद्गम, विकास तथा लोकप्रियता पर प्रकाश डालते हुए अजित कुमार ने लिखा है—"द्वितीय महायुद्ध मे यह साहित्यिक गद्य रूप पाश्चात्य साहित्य और विशेषत रूसी साहित्य मे बहुत लोकप्रिय और विकसित हुआ। एलिया एलनवग को रिपोर्ताज' लेखक के रूप मे बडी ख्याति मिलो। हिन्दी मे रिपोर्ताज साहित्य मूलत विदेशी साहित्य के प्रभाव से आया। किन्तु हिन्दी मे रिपोर्ताज की शैली मज नही सकी है। बगाल के अकाल और जन आन्दोलन आदि विषयो को लेकर 'रिपोर्ताज' लिखे अवश्य गये हैं, पर हिन्दी मे रिपोर्ताज का एक सुनिश्चित साहित्य रूप प्रतिष्ठा प्राप्त नही कर सका है। सवश्री प्रकाशचन्द गुप्त, रागेयराघव, प्रभाकर माचवे तथा अमृतराय आदि ने हिन्दी मे रिपोर्ताज' लिखे है।"[1] यद्यपि इस मत को प्रकाशित हुए तीन दशक से ऊपर हो गये है तथापि इसकी मूल भावना कि रिपोर्ताज मूलत विदेशी साहित्य के प्रभाव से आया' आज भी उसी रूप मे स्वीकृत है।

श्री अजीतकुतार के साथ असहमति प्रकट करते हुए यह कहा जा सकता है कि यदि 'सुदशन' और श्रीराघवेन्द्र' मे प्रकाशित मिश्रजी की टिप्पणियो का सम्यक् रूप से आकलन किया जाए तो यह निश्चित हो जायेगा कि सन् 1900 और 1907 के मध्य जब द्वितीय तो क्या प्रथम विश्वयुद्ध की विभीषिका का काल्पनिक अस्तित्व भी नही था हिन्दी मे इस विधा का बीज वपन हो चुका था। कारण स्पष्ट है, उस समय

1 रिपोर्ताज, हिन्दी साहित्यकोश, भाग 1, पृष्ठ 716

के सम्पादक का व्यक्तित्व बड़ा विचित्र और विषम परिस्थितियों में संघर्ष करने वाला होता था। इस संदर्भ में यह निर्विवाद सत्य स्थापित हो चुका है कि प० माधवप्रसाद मिश्र एक सफल कथाकार और कुशल पत्रकार थे। यद्यपि मिश्रजी कृत लघु लेखों को विशुद्ध रिपोर्ताज की संज्ञा नहीं दी जा सकती तथापि उनके विषय प्रतिपादन और वर्तमान साहित्य मीमांसकों द्वारा 'रिपोर्ताज' विधा के गुण तथा मान्य तत्त्वों के परिवेश में पिंजरा पोल', 'क्वीन्स कालेज बनारस', 'दान की दुर्दशा' और विशुद्धानन्द विद्यालय' आदि कई लघु लेख इस आधुनिकतम विधा 'रिपोर्ताज' के पूर्व रूप की झांकी प्रस्तुत करने में सक्षम हैं। इसे मिश्रजी के व्यक्तित्व की दूरगामी दृष्टि तथा कृतित्व की भावी सम्भावना के प्रति जागरूकता तथा नव सृजन के पूर्वाभास का संकेत भी मान सकते हैं।

मिश्रजी के पत्र

पत्र सामान्यतः परस्पर कुशलक्षेम के आदान प्रदान के लिए लिखे जाते हैं किन्तु पत्र व्यवहार व्यक्ति जीवन के अनेक उन अन्तरंग भावों को प्रकाश में लाता है जिनकी साधारण रूप में कल्पना भी नहीं की जा सकती। क्योंकि अधिकांश पत्र किसी न किसी आवेग, आक्रोश, उद्वेग अथवा उल्लास के क्षणों में लिखे जाते हैं—विशेषकर साहित्य साधकों के। गत दशक के प्रारम्भ में यह विधा पर्याप्त चर्चित रही और सम्भावना बनी कि कुछ कालोपरान्त यह विधा साहित्य में अपना स्वतन्त्र स्थान बना लेगी। इस विधा की चर्चा और प्रतिष्ठा हिन्दी के दो मूर्धन्य कवियों के पत्रों के आधार पर हुई। इसके पश्चात् पत्र पत्रिकाओं में अन्य अनेक साहित्यकारों के पत्र लेखन की चर्चा हुई और कुछ पत्रों के पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित होने की सम्भावना बनी। आचार्य बनारसीदास चतुर्वेदी, श्रीनारायण चतुर्वेदी तथा प० झाबरमल शर्मा आदि विद्वान् इस दिशा में पर्याप्त महत्त्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। प० माधवप्रसाद मिश्र की जीवन सम्बन्धी परिचर्चा से स्पष्ट है कि उनकी परिचय सीमा पर्याप्त विस्तृत और बहुवर्गीय थी। इसके साथ ही उन्होंने स्वभाव और कर्म की प्रेरणा से भी पर्याप्त भ्रमण किया। भ्रमण के क्षेत्र में उनके समसामयिक किसी साहित्यकार के इतना भ्रमणशील होने का इतिहास नहीं मिलता। मिश्रजी ने चारों धामों की यात्रा के अतिरिक्त अनेक नगरों की यात्रा की। इन यात्राओं के आधार पर इनसे सम्बन्धित एक पुस्तक प्रकाशित करने की उनकी योजना क्रूर काल ने पूरी न होने दी। उनके कतिपय यात्रा वृत्तान्त आज उपलब्ध हैं। यात्राओं के समय विभिन्न स्थानों पर ठहरने तथा प्रवचन आदि करने से स्वतः सिद्ध है कि उन स्थानों पर उनके मित्र अथवा श्रद्धालु जन रहते ही होंगे और उनके साथ पत्र व्यवहार भी हुआ ही होगा। किन्तु दुर्भाग्य की बात है कि अन्यत्र तो क्या साहित्य संस्थाओं और उनके सगे सम्बन्धियों के पास भी मिश्रजी के पत्र नहीं हैं। केवल कलकत्ता निवासी लाला बालमुकुन्द गुप्त के वंशजों के सौजन्य से मिश्रजी की हस्तलिपि देखने का सौभाग्य मिला। व्याख्यान वाचस्पति प० दीनदयालु शर्मा के नाम लिखे कुछ पत्रों की टंकित प्रतियाँ उनके पुत्र श्री हरिहरस्वरूप शर्मा (दरियागंज, दिल्ली) के पास देखने को

मिली। भिवानी से भी प० माधवप्रसाद मिश्र का एकाध पत्र उनके अनुज राधाकृष्ण मिश्र के नाम लिखा हुआ मिला। उनके दो तीन पत्र 'श्रीराघवेन्द्र' मे प्रकाशित भी हुए। मिश्रजी के उपलब्ध इन कतिपय पत्रो के आधार पर उनकी प्रतिभा, स्वभाव, विचार तथा दृष्टि के साथ उनकी भाषा शैली के पैनेपन तथा निजत्व के साथ लेखनी पर अधिकार को प्रत्यक्ष देखा तथा परखा जा सकता है। प० दीनदयालु शर्मा को लिखे पत्रो मे विचार विनिमय निवेदन व्यग्य स्पष्टवादिता योजनाबद्धता तीखापन सामाजिक कुरीतियो के प्रति भर्त्सना का स्वर सुनायी पडता है। इन पत्रो की भाषा मे वैयक्तिकता और आत्मीयता का अपना ही रूप है।

पूर्व विवरण से मिश्रजी के परिचय क्षेत्र की व्यापकता स्वयसिद्ध हो जाती है। उनका यह क्षेत्र बहुवर्गीय था। उसमे लब्धप्रतिष्ठित साहित्यकार, समाज सुधारक, अधिकारी राजनेता आदि थे। अत उनके पत्र लेखन की कोई शैली निश्चित नही थी, न ही वे इस दिशा मे इतने आत्म सचेष्ट थे। मौज पर आने मे वे पद्य मे भी पत्र लिख डालते थे। उर्दू पत्र 'भारत प्रताप' से लाला बालमुकुन्द गुप्त का घनिष्ठ सम्बन्ध था। जब गुप्त जी ने 'भारत प्रताप' की एक प्रति मिश्रजी को समर्पित की तो उन्होने काशी से खडी बोली और ब्रज भाषा मे एक पद्यबद्ध पत्र प्रेषित किया। और बाबू कार्तिकप्रसाद खत्री के आग्रह पर मिश्रजी ने जो पत्र लाला बालमुकुन्द गुप्त को लिखा उससे उनकी पत्र लेखन मे कुशलता का परिचय मिलता है। यह पत्र यहा प्रस्तुत है—

त्रिपुरा भैरवी रामलाल का मठ,
श्री काशी धाम। 23-12-1892

प्रियवर,

स्वस्त्यमस्तु। पत्र आया, आनन्द हुआ, श्री पण्डित जी का पत्र भी लखनऊ से आया हमारे कई मित्रो ने मासिक पत्र निकालने का प्रबन्ध किया है, जिसमे कार्यकर्त्ता चार है—कविवर रत्नाकर, बाबू राधाकृष्ण बाबू कार्तिक प्रसाद जी और देवकीनन्दन जी। और भी प्रसिद्ध प्रसिद्ध लेखको ने इसमे स्वार्थ लिया है। इन लोगो की प्रेरणा से ही मैने यह पत्र लिखा है कि आप भी इसके सहकारी बने। कई एक श्रीमानो ने अभी से सहायता दी है। आज तक इस ढग का हिन्दी मे पत्र नही निकला है विशेष पत्र देखने पर सब ज्ञात होगा। इस समय बाबू कार्तिकप्रसाद जी पास बैठे लिखा रहे है। 1 जनवरी से पत्र प्रकाशित होगा तब प्रथम सख्या से बाबू साहिब निज मित्रो सहित आपसे भेंट (परिचय) करेगे। खेद है कि आप आये थे तब कई कारणो से इन लोगो से भेट न करा सका। फिर सही, हमारे चचल कवि बाबू जगन्नाथ गुप्त, बी० ए० (रत्नाकर) आपके गुणो मे ही आप मे अनुरक्त हो सके है।

आशा है आप इस मकुली की मैत्री को सहर्ष स्वीकार करेगे।

आपका,
माधव शर्मा

नोट साहित्य सुधानिधि, मुजफ्फरपुर से प्रकाशित हुआ। व्यवस्थापक देवकी नन्दन खत्री।

मिश्रजी के पत्रो से उस समय की साहित्यिक गतिविधि और सामाजिक दशा का ज्ञान होता है। ये पत्र मिश्रजी की सामयिक परिस्थितियो का भी चित्र प्रस्तुत करने मे समथ है। दिनाक 4-10-99 को शिमला से प० दीनदयालु शर्मा को लिखा गया पत्र मिश्रजी की आर्थिक स्थिति तथा स्पष्टवादिता का चाक्षुष ज्ञान कराता है—"यह जानकर परमानन्द हुआ कि आप जन्मभूमि मे सकुशल पधार चुके है। मेरे ऐसे भाग्य कहाँ जो जन्मभूमि के सुखवास का आनन्द ले सकू। न बैठने को स्थान है, न खाने को अन्न। सुतरा भिवानी जाने की आवश्यकता नही और न ऐसी कोई वस्तु जिसका दुर्भिक्ष मे लुटने का डर हो।" इसी प्रकार वाराणसी से बाबू बालमुकुन्द गुप्त को लिखे गये पत्र के अश से भी मिश्रजी की व्यग्यात्मक पत्र लेखन शैली का परिचय मिलता है—" . महामारी का प्रचण्ड प्रकोप अद्यावधि शान्त नही हुआ अपितु विस्तारित ही होता जाता है। मुझको आराम है किन्तु अच्छा किंचित मात्र नही। ग्रीष्म से हृदय व्याकुल है। हिसार पाठशाला के शुभ समाचार से विशेष आह्लाद है। यहाँ मन्त्री जी के बिना इस स्थान के कार्यालय की आशा निष्फल हुई। राजा शशिशेखर भी हतोत्साहित हुए। यहा दक्षलीय नारायण शास्त्री भी इनकार कर गये। राजा जी के एकमात्र वागाडम्बर से सभी विस्मित से हैं। यदि भारत भास्कर प० दीनदयालु शर्मा जी आपके पास आवें तो आप एक बार उन्हे इधर आने की सम्मति देना। इधर आये बिना कथमपि मण्डल-मामला शान्त नही होगा। उनसे मेरी प्रणति के पश्चात् कहना कि दास को क्यो भूल गये। उनके पास नही हो तो, लेखनी पत्र और मसि पात्र भी देकर उपरोक्त पता भी देना।"

मिश्रजी की नाट्य रचनाएँ

प० माधवप्रसाद मिश्र के व्यक्तित्व का विवेचन करते हुए यह सिद्ध किया जा चुका है कि वे मूक साहित्य चिंतक तथा लोकमगल के अभिलाषी थे। अत समसामयिक विषयो पर पत्रकार के विविधोन्मुखी दायित्व को निभाते हुए, उन्होने अन्य विधाओ के साथ नाट्य विधा पर भी लेखनी उठायी। इस रूप में मिश्रजी की दो रचनाएँ अभी भी उपलब्ध है—'कन्या हरण' तथा 'कनक और सुन्दर'। इस सम्बन्ध मे कलकत्ता विश्व विद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष प्रो० कल्याणमल लोढा ने उपयुक्त रचनाओ को मिश्र जी की देन स्वीकार करते हुए, उस विधा को मिश्रजी का अल्प किन्तु सामयिकता की दृष्टि से महत्त्वपूण योगदान माना है।

'कन्याहरण' रचना के विपय मे 'सुदर्शन' के वष 2, अक 3 (मार्च 1901) के पृष्ठ 20 पर 'सम्पादकीय निवेदन' स्तम्भ के अन्तर्गत निम्नलिखित टिप्पणी प्रकाशित हुई—"एक सत्य घटना पर सामाजिक विषय की नाटकीय शैली की रचना।" इस रचना का मगलाचरण दोहे से होता है—'जय भृगु कुल नन्दन हरे, मेटहु अत्याचार। रेणु केम

द्विज दु ख हर, कर गहि कठिन कुठार ।' प्रस्तुत अश नन्दी के पीछे सूत्रधार कहता है। सम्पूण रचना पद्यमय है। रचना का प्रतिपाद्य कलकत्ता के एक धनिक की कन्या का अपहरण होता है, धनिक सेठ दरबार मे जाकर शासक वग से अपना रोना रोता है कन्या की खोज की जाती है। यह एक सामाजिक रचना है।"

इसी प्रकार वैश्योपकारक' के प्रथम वष के प्रथम अक मे 'कनक और सुन्दर' नामक नाट्य शैली की रचना प्रकाशित हुई। इसमे होली के अवसर पर दो सखियो के परस्पर वार्तालाप के माध्यम से पुरातन तथा नूतन भावो की द्वन्द्वात्मकता का चित्रण किया गया है। उसमे पुरातन के प्रति नवीन युग का आक्रोश स्वर प्रखर है। 'कनक' और 'सुन्दर' दो सखिया है। दोनो दो युगो की भावनाओ का प्रतिनिधित्व करती हैं। 'कनक' पुरातन तथा परम्परावाद की पोषक है तथा नारी स्वातन्त्र्य की विराधी है और 'सुन्दर' पुरातन की विरोधी तथा आधुनिकता और नारी स्वातन्त्र्य की पोषक है। आधुनिकतम शिल्प विधायक आलोचक इसे केवल वार्ता कह सकते है किन्तु युग परिवेश के परिप्रेक्ष्य मे विचार करने पर यह कहना अनुचित न होगा कि हरियाणा की लोक भाषा मे रचित यह रचना नाटकीय तत्त्वो को स्वत मे सहज ही समेटे हुए है। इस सन्दभ मे निम्नांश द्रष्टव्य है—

(कनक कुर्सी पर बैठी हुई है, सुन्दर टेबल का आसरा लिए खड़ी है और पुस्तक के ऊपर आगली धर कर बात कर रही है)

कनक (हँसकर) वाह री वाह ! होली दिन हुआ तो के हुऔ। लुगाई की जात ने इतनी छूट !!

सुन्दर (मुह मोडकर) फेर बरस भर तो म्हे मोट्यारा का गुलाम बनाकर घर मे मुटिया के ज्यू धन्दो करवो करो तो भलो, इशा होली के दिन मे क्यू भी हासी-खुशी के साथ दिन गुजारो के नही।

उक्त शैली मे दोनो सखियो मे एक दीघ वार्ता होती है जिसमे पुराने और नये विचारो की ध्वनि प्रमुख और प्रखर रूप मे व्यक्त हुई है। इस रचना मे हरियाणा की बोली का सही प्रयोग मिश्रजी के भाषा अधिकार का द्योतक है तथा रचना नारी भावना की सहज अनुभूति का सजीव चित्र प्रस्तुत करने मे समथ है। यह ठीक है कि आधुनिक दृष्टिकोण और सिद्धान्तानुसार इन रचनाओ को नाटकीय तत्त्वो की शास्त्रीय और सैद्धान्तिक कसौटी पर नही कसा जा सकता किन्तु यहा प्रश्न यह नहीं है। अपितु हमे मिश्रजी के इस साहस के लिए सराहना करनी चाहिए कि विषम परिस्थितियो मे भी और किसी प्रकार का साधन उपलब्ध न होने के बावजूद उन्होने साहित्य की अनेक प्रचलित और अप्रचलित विधाओ पर लेखनी उठाकर अपनी साहित्यिक-सामाजिक सवेदनशीलता का जो परिचय दिया है, वह उनके व्यक्तित्व की ओजस्विता तथा जागरूकता का परिचायक और व्यापक कृतित्व का समथक है।

मिश्रजी की कविताओ मे भी समाज सुधार, लोकहित की भावना के साथ व्यग्य की चुभन दर्शनीय है। इस सम्बन्ध मे स्वतन्त्र रूप से चर्चा की गयी है।

'माधव मिश्र निबन्धमाला' मे सकलित उनके 76 लेखो के अतिरिक्त मिश्रजी के अनेक लेख तथा रचनाएँ काल के क्रूर हाथो समाप्त हो चुकी है। जो उपलब्ध है, उनकी तालिका निम्नलिखित है—

(1) **मन्त्री की वक्तृता** इस रचना मे उपशीषको के अन्तगत भारत महा मण्डल की जन्म पत्री प्रस्तुत की गयी है। प्रसगवशात् उसके कई पदाधिकारियो के क्रिया कलापो की चर्चा तथा भण्डाफोड भी कलात्मक किन्तु तथ्यपरक यथाथ शैली मे किया गया है। इसे एक सुन्दर रिपोट कहा जा सकता है।

(2) हमारी शिक्षा मे ह्रास शिक्षा सम्बन्धी विचारोत्तेजक लेख है।

(3) 'चिराग तले अधेरा' मे 'श्री वेंकटेश्वर समाचार' और 'भारतमित्र' मे 'भारत जीवन प्रेस, काशी' द्वारा प्रकाशित पुस्तको के परिचय से सम्बन्धित आलोचना है।

(4) 'महामण्डल और महाराज' शीषक से मिश्रजी ने अनेक लघु लेख 'सुदशन' मे लिखे जिनका सकलन एक पुस्तक का रूप ले सकता है। इन लेखो का मूलाधार 'भारत धर्म महामण्डल' और उसमे प्रमुख सस्थापक प० दीनदयालु शर्मा तथा सरक्षक दरभगा नरेश हैं क्योकि मण्डल की सफलता और यात्राओ द्वारा प्राप्त चन्दे की विपुल राशि ने धम पोषक और सरक्षक महान आत्माओ को विषयोन्मुख कर दिया था। 'सुदशन' के अन्तिम अको मे मिश्रजी ने न केवल लेखो से ही इसका उद्घाटन किया अपितु स्पष्ट रेखाचित्रो द्वारा सर्वसामान्य को इसका ज्ञान कराने और इन नामधारी धम नेताओ से सावधान होने की प्रेरणा दी।

(5) इसी प्रकार 'विविध प्रसग' शीषक के अन्तगत 'सुदशन' मे लिखित अनेक सामयिक टिप्पणियो को भी सकलित किया जा सकता है।

(6) 'वैश्योपकारक' मे भी अनेक टिप्पणियाँ उपलब्ध है—

(क) 'पजाब का भूकम्प और मारवाडी', वष 2, सख्या , पृष्ठ 124-126।

(ख) शिल्प और वाणिज्य।

(ग) अवनति का कारण, वर्ष 2, सख्या 6, पृष्ठ 161।

(घ) 'भारतमित्र' की अनस्थिरता (घनश्यामदास गुप्त के छद्म नाम से लिखा लेख), वष 2, सख्या 12, पृष्ठ 329।

(ड) समालोचना की आलोचना।

(च) 'खुली चिट्ठी' श्रीयुत बाबू शिवप्रसाद जी झुँझनूवाला के नाम, वष 1, सख्या 12, पृष्ठ 356।

उपरिलिखित टिप्पणियो और लेखो मे समसामयिक साहित्यिक विषय जैसे आचार्य द्विवेदी तथा लाला बालमुकुन्द गुप्त के मध्य 'अनस्थिरता' शब्द को लेकर जो विवाद

चली और जिसमे उस समय के अधिकाश विद्वानो ने प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप से दोनो पक्षो मे भाग लिया। गुप्त जी ने 'आत्माराम' छद्म नाम से द्विवेदी जी पर चोट की तो प० गोविन्दनारायण मिश्र ने 'आत्माराम की टें टें' शीषक से गुप्त जी की खबर ली। इस शब्दावली और छद्म नामो से उस समय की साहित्यिक ऊष्मा के दशन होते हैं कि साहित्य मे किसी प्रश्न के उठने की देर थी कि उस समय के साहित्यकारो की लेखनी सजग हो उठती थी।

मिश्रजी का व्यक्तित्व और कृतित्व भी इस सामयिकता से अछूता नही है। उनके लघु लेखो और टिप्पणियो मे समसामयिक विषयो और तात्कालिक परम्पराओ की सहज और सफल अभिव्यक्ति हुई है। उनके चुटीले व्यग्य और भाषा का तीखापन सवत्र द्रष्टव्य है। अन्त मे कह सकते हैं कि प० माधवप्रसाद मिश्र का कृतित्व अपने व्यक्तित्व की गरिमा के समान ही बहुमुखी और सशक्त है। उनके कृतित्व मे एक जागरूक, भारतीय चिंतक तथा लोकमगल के पोषक साहित्यकार की आत्मा के दशन, उनके सफल पत्रकार और कुशल निबन्धकार के माध्यम से सवत्र किये जा सकते हैं।

10
प० माधव प्रसाद मिश्र का हिन्दी-साहित्य को योगदान

हिन्दी साहित्य के इतिहास ग्रन्थो मे मिश्रजी का परिचय 'सुदर्शन' सम्पादक तथा ओजस्वी निबन्धकार आदि के साथ सक्षिप्त रूप से दिया गया है। परवर्ती इतिहास ग्रन्थो ने भी उनकी साहित्य साधना तथा बहुमुखी प्रतिभा की ओर ध्यान नही दिया जिसका मूल कारण रहा मिश्रजी के साहित्य का सहज उपलब्ध न होना और इधर प्रकाशकाधीन, सुविधाभोगी लेखक जो सहज प्राप्य, उपलब्ध सामग्री के चयन और सकलन मात्र मे ही अपने कत्तव्य की इतिश्री समझता है। मिश्रजी के कृतित्व के विवेचन विश्लेषण के आधार पर अनेक निष्कष निकाले जा सकते है।

मिश्रजी के साहित्य जगत् मे प्रवेश करते समय हिन्दी गद्य परिष्कार की ओर उ मुख था और उसके परिष्कार का सम्पूण श्रेय आचाय महावीरप्रसाद द्विवेदी को दिया गया। यदि सन् 1900 से मार्च 1907 तक की अल्पावधि मे की गयी मिश्रजी की साहित्य साधना पर विचार मथन किया जाय तो विषय चयन, भाषा शैली और मौलिकता की दृष्टि से मिश्रजी का स्थान कही ऊँचा और महत्त्वपूण ठहरता है। इस अल्पज्ञ लेखक ने अपने शोध प्रबन्ध मे मिश्रजी के उपलब्ध साहित्य और विवरण के आधार पर प्रथम बार मौलिक दृष्टि से विनम्र प्रयास किया है। हिन्दी साहित्य के इतिहास लेखको ने द्विवेदी युग के निबन्धकारो मे उनकी गणना अवश्य की है किन्तु उनकी साहित्य साधना, अवधि, विषय, शिल्प और शैली का मूल्याकन नही किया।

निबन्ध विधा के विकासक्रम मे विषय भाषा, शिल्प और शैली की दृष्टि से मिश्रजी भारतेन्दु तथा शुक्ल जी के मध्य सम्बन्ध स्थापित करने वाली एक महत्त्वपूण कडी है। द्विवेदी जी के निबन्धो मे विषय की विविधता तो है किन्तु उनमे गहनता और गहरी पैठ के साथ-साथ उदारमना आलोचक के पुट का अभाव भी है, उनकी आलोचना दोष दशन और छिद्रान्वेषण पर अधिक आधारित है और किसी सीमा तक वे पूर्वाग्रही भी हैं जबकि मिश्रजी की साधना इन त्रुटियो से सवथा मुक्त है। प० पद्मसिंह शर्मा के निबन्धो के व्यग्य का तीखापन और भाषा की चित्रमयता मिश्रजी के विचारमूलक तथा यात्रावृत्तो मे पर्याप्त मात्रा मे द्रष्टव्य है। इसी प्रकार आचाय रामचन्द्र शुक्ल के निबन्धो

मे विद्यमान भारतीयता से ओतप्रोत दृष्टि, पूर्वाग्रह मुक्त, तटस्थ, तकसम्मत तथा लोक मगल विधायक भावना का प्रारूप भी मिश्रजी के निबन्धो मे देखा जा सकता है।

आलोचना के क्षेत्र मे जिस सम्यक् आलोचना का विकास आचाय शुक्ल की आलोचना पद्धति पर माना जाता है, उसकी पृष्ठभूमि मिश्रजी के आलोचना सम्बन्धी विचारो तथा आलोच्य विषयो मे देखी और परखी जा सकती है।

कहानीकार के रूप मे मिश्रजी के कृतित्व के मूल्याकन की सर्वाधिक अपेक्षा है। 'वैश्योपकारक' के 1904 और 1905 के अको मे धारावाहिक रूप से प्रकाशित 'लडकी की बहादुरी' कहानी अपने कथ्य, विषय प्रतिपादन, यथाथ चित्रण, भाषा शैली आदि सभी दृष्टियो से एक श्रेष्ठ और मौलिक कहानी ठहरती है। इसमे मारवाडी समाज के विलासी जीवन का चित्रण, जस्सा जाट के माध्यम से एक वर्ग और प्रान्त विशेष का चरित्रोद्घाटन, यौन आकषण, सामाजिक अवस्थाओ तथा समस्याओ के निरूपण के साथ साथ पात्रानुकूल भाषा योजना आदि उसे श्रेष्ठ कहानी सिद्ध करने मे सक्षम हैं। कथा सम्राट् मुन्शी प्रेमचन्द के साहित्य का मूल और प्रमुख स्वर आदर्शोन्मुखी-यथार्थवाद है जो चेतना देने के साथ साथ लोकमगल विधायक होने के कारण एक महत्त्वपूर्ण शिल्प के रूप मे साहित्य जगत् मे शिरोधाय है। मुशी जी के इस मूल और प्रमुख स्वर का पूर्वाभास अथवा प्रारूप हमे मिश्रजी की उक्त कहानी मे स्पष्टत और सशक्त रूप मे दीखता है। सम्भवत इन्ही विशेषताओ को दृष्टि मे रखते हुए डा० नगेन्द्र द्वारा सम्पादित 'हिन्दी साहित्य का इतिहास' ग्रन्थ मे एकमात्र डा० रामचन्द्र तिवारी ने हिन्दी कहानी के सन्दभ मे प० माधवप्रसाद मिश्र की गणना हिन्दी के आरम्भिक कहानीकारो मे की है।

पत्रकारिता के क्षेत्र मे मिश्रजी का प्रवेश सन् 1900 मे 'सुदशन' के प्रकाशन काल से माच 1907 तक की अल्पावधि का काल है। इस काल मे अप्रैल 1902 तक मिश्रजी ने 'सुदशन' के सम्पादक के रूप मे तथा कुछ समय उपरान्त अनौपचारिक रूप से 'वैश्योपकारक' का सम्पादन किया। 'वैश्योपकारक' मे नाम न देने का कारण 'सुदर्शन' की प्रतिष्ठा और उसका असमय बन्द होना था। 'सुदशन' ने इस अल्पावधि मे ही शीषस्थ ख्याति प्राप्त कर पत्रकारिता को एक नया आयाम दिया था जिसकी चर्चा पत्रकार माधव मिश्र अध्याय मे की जा चुकी है। मिश्रजी के वरिष्ठ पत्रकार होने के दो उदाहरण दिये जा सकते है—(1) स्वय आचाय महावीरप्रसाद द्विवेदी ने सन् 1900 मे 'सुदशन' मे प्रकाशनाथ अपनी एक दीघ कविता 'अयोध्या-विलाप' मिश्रजी के पास भेजी जो दो अको मे प्रकाशित हुई। और (2) मैथिलीशरण गुप्त की आरम्भिक कविताओ का सम्पादन तथा 'सुदशन' मे प्रकाशित करना है। यह निर्विवाद सत्य है कि एक प्रतिष्ठित साहित्यकार अपनी रचना सम्पादक के अस्तित्व और महत्त्व को स्वीकार किये बिना भी भेज सकता है किन्तु एक उदीयमान लेखक और कवि को सम्पादक के अस्तित्व और महत्त्व को स्वीकार करना ही पडता है। इस दृष्टि से आचार्य द्विवेदी

और मैथिलीशरण गुप्त प० माधवप्रसाद मिश्र से कनिष्ठ साहित्यकार ठहरते हैं। काश ! उन्हे साहित्य साधना का कुछ समय और मिला होता !!

यात्रा-साहित्य

समूचा साहित्य ही मानव जीवन यात्रा की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। हिन्दी-साहित्य मे भारतन्दु युग से गद्य के साथ साथ इस विधा का सूत्रपात हुआ। साहित्य मे सत्यम्, शिवम् और सुन्दरम् के शाश्वत मूल्यो की रक्षाथ एक साहित्य साधक के लिए यात्रा परमावश्यक है। आधुनिक साहित्कार की दृष्टि मे प्रेरणा देना उपदेश के समान है और उपदेश देना धम-प्रचारक अथवा अध्यापक का काम हे। इसी धारणा के अनुसार आज के अधिकाश शारदा पुत्र बुद्धिजीवी निष्प्रयोजन यात्राएँ करते हैं किन्तु प० माधव प्रसाद मिश्र की दृष्टि इससे सवथा पृथक् ह। उनकी यात्राएँ सोद्देश्य थी, उनके मूल मे धम-प्रचार और समाज-सुधार निहित था किन्तु उनके यात्रा वृत्त कोरे वणन नही हैं वरन् उनमे एक अन्वेषक की दृष्टि और साहित्यकार की भावात्मक सस्पर्शिता भी विद्यमान है। फलस्वरूप उनके यात्रा वृत्तो मे रोचकता, धार्मिक सहिष्णुता, कलात्मकता और प्रेरणा निहित है। इसके साथ ही आधुनक यात्रा प्रतिमानो की कसौटी पर भी ये यात्रा वृत्त खरे उतरते है।

कवि रूप जहाँ तक मिश्रजी के कवि रूप का प्रश्न हे, वह उनकी साधना का गौण और परोक्ष रूप है। अति आवेश और भावावेग के समय ही उन्होने कविता कामिनी को आमन्त्रित किया है। किन्तु जो भी रचनाएँ उपलब्ध हुई है, उनके आधार पर मिश्रजी की कवित्व शक्ति का सजीव प्रमाण मिलता है। मिश्रजी की कविता कल्पना लोक की अभि व्यक्ति नही है, अपितु उसमे चतुर्दिक फैले मानवीय सवेदन की अभिव्यक्ति है। कला पक्ष के अलकार आदि तत्त्व सहज स्वाभाविक रूप मे ही अपनाय गय है। उनके प्रति मिश्रजी का मोह नही है। वस्तुत वे मानव और मानवता के पोषक थे और कविता इन भावो की अभिव्यक्ति का साधन ही रही, वह साध्य नही बनी। मिश्रजी की कविताओ मे ब्रज और खडी बोली दोनो का सहज तथा स्वाभाविक रूप देखा जा सकता है।

भाषा-शैली भाषा-परिष्कार, शैली निरूपण और नागरी लिपि मे सशोधन की दृष्टि से भी मिश्रजी ने मौन साधक के समान योगदान दिया। सम्पूण साहित्य और उसकी विधाओ की अभिव्यक्ति का आधार भाषा ही है। शैली व्यक्ति के व्यक्तित्व की परिचायक है। परिस्थितिवश आधुनिक युग पद्य की अपेक्षा गद्य की ओर अधिक आकृष्ट हुआ। भारतेन्दु युग मे जिस नवयुग, जागरण और चेतना का शखनाद हुआ, उसे जन जन तक पहुँचाने के लिए पद्य माध्यम समथ नही था। अत पद्य का स्थान गद्य ने और ब्रज भाषा का खडी बोली ने ले लिया। मिश्रजी युगानुरूप खडी बोली और अद्यतन विधाओ के जन्म और विकास मे महत्त्वपूण योगदान कर गये हैं।

भाषा-परिष्कार की दृष्टि से सन् 1900 से 'सुदशन' के लिए तैयार मिश्रजी द्वारा सामग्री का अवलोकन करने से यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि द्विवेदी जी

से पूव ही वे भाषा मे प्राजलता और प्रौढता लाने के साथ शैली निर्माण का काय आरम्भ कर चुके थे। सस्कृत की परम्परागत पैतृक ज्ञान सलिला से मिश्रजी का अन्त करण द्विवेदी जी की तुलना मे कही अधिक आप्लावित था। भाषा परिष्कार की दृष्टि से अदालत मे नागरी' तथा एक लिपि कैसे हो' उनके विचारोत्तेजक लेख आज भी अनुसधित्सु के लिए भाषा और व्याकरण को नयी दिशा प्रदान करने मे समथ है।

मिश्रजी स्वय शैलीकार थे। उन्होने परम्परागत समास, व्यास आदि शैलियो के अतिरिक्त अपने व्यक्तित्व के अनुरूप व्यग्य तथा पाण्डित्यापूण शैलियो का प्रयोग भी अपनी रचनाओ मे प्रचुर मात्रा मे किया है और इस सम्बन्ध मे यह कहना अनुचित न होगा कि उनके परवर्ती साहित्कार प० पद्मसिंह शर्मा की शैली मे जिस तीखे व्यग्य की अभिव्यजना के आधुनिक साहित्यकार तक कायल है उसका सूत्रपात मिश्रजी की लेखनी द्वारा हो चुका था।

आचाय रामचन्द्र शुक्ल, अम्बिकाप्रसाद वाजपेयी प० राहुल साकृत्यायन तथा प्रोफेसर कल्याणमल लोढा प्रभृति विद्वानो ने मिश्रजी की शैली की मुक्त कण्ठ से प्रशसा की है। लाला बालमुकुन्द गुप्त के अनुसार वे हिन्दी के बेजोड लेखक थे। उनकी शैली आवेशमुक्त, आक्रोशपूण तथा प्रगल्भ होती थी।

अन्त मे यह कहना असमीचीन न होगा कि मिश्रजी का हिन्दी साहित्य और उसकी विविध विधाओ की समृद्धि मे महत्त्वपूण योगदान रहा है किन्तु दुर्भाग्यवश उनकी ओर हमारे सुधी समीक्षको का ध्यान नही गया। सम्भवत इस दिशा मे सर्वांग दृष्टि से शोध करने का प्रयास इस लेखक की ओर से किया गया और इस रचना के प्रकाशन का गौरव 'हरियाणा साहित्य अकादमी' को है। मिश्रजी को उनकी साधनानुरूप हिन्दी साहित्य मे प्रतिष्ठित करने और उनको उचित स्थान दिलाने की परमावश्यकता है।